महाभाव – दिनमणि श्रीराधाबाबा

(प्रथम खण्ड)

पृष्ठ संख्या 501-600 तक

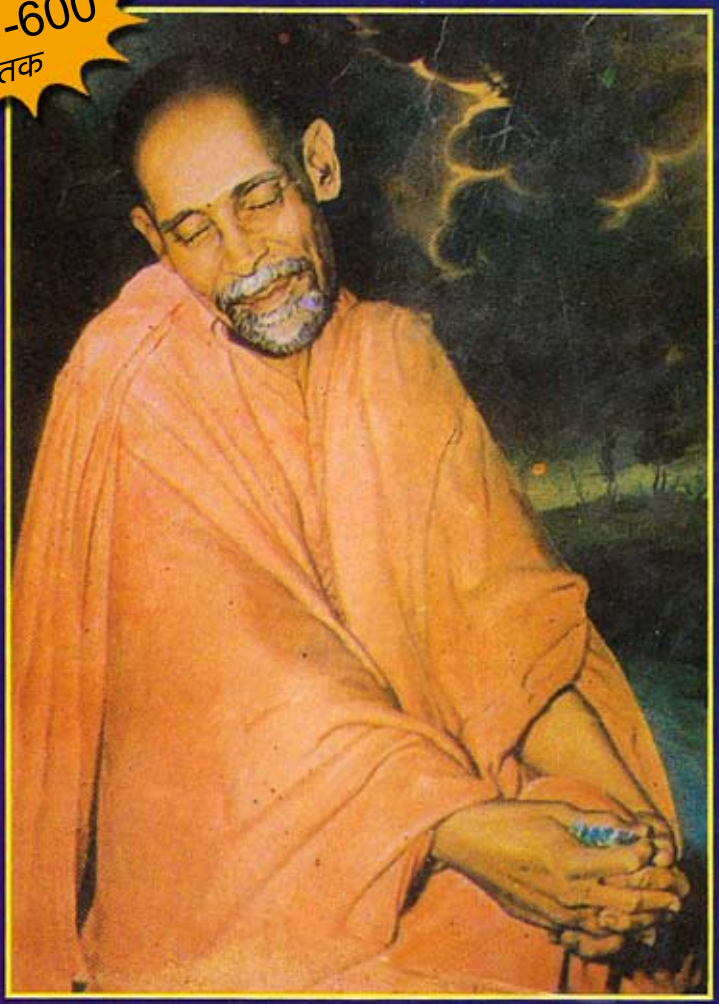

साधु कृष्णप्रेम

दोनों कान किसलय दल से कैसे मनोहर हैं ? पुष्पाभरण कुंडलों के रूप में शोभा पा रहे हैं । दर्पण सदृश श्यामल मनोहर कपोल हैं । लावण्ययुक्त मुखारविन्द कोटि-कोटि शशधरों की कान्ति बिखेर रहा है । ठोड़ी विविध हास्य रस की छटा से अत्यन्त मधुर एवं प्रकाशयुक्त प्रतीत हो रही है । कण्ठदेश में मुक्ताहार सुशोभित हैं । अहा ! कितना लावण्य भरा है इस कण्ठ में ! त्रिभंगी मुद्रा से खडे हुए वे त्रिलोकी को मोहित कर रहे हैं। ग्रीवा की मरोड़ अत्यन्त मधुर तथा आकर्षक है । वक्षस्थल तो मानो लावण्य का आकार ही है । रानी को परमानन्द दान करने के लिये कैसा उत्सुक हो रहा है यह, विद्युत् के समान चमचम करती मणिमालाएँ एवं मुक्तामाल उसकी शोभा को बढ़ा रही हैं और इनके मध्य मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ तो बहुत ही आकर्षक लग रहा है । रक्त कमल से लाल-लाल करतल हैं । आजानुलम्बित भुजायें हैं । भुजाओं में केयूर एवं कंकण सब मात्र पुष्पों के हैं । रक्त कमल के से लाल-लाल करतल विविध चिन्हों से सुशोभित हैं । उदर अत्यंत मनोमोहक है, उस पर लावण्य अहर्निश क्रीड़ा करता रहता है । पृष्ठदेश और पार्श्वभाग भी अमृत के समान मधुर हैं । सभी अंग चिन्मय विहार करने के लिये रानी को आमंत्रण दे रहे हैं । बर्तुल नितम्बभाग सुधा-सम्भृत कमल के समान मादक है । इन्हें देखकर कंदर्प स्वयं मोहित है । दोनों उरु मनोहर कदली स्तंभों की शोभा को परास्त कर रहे हैं । इन्हें देखकर ऐसी कौन युवती है जिसका मन मुग्ध नहीं हो उठे । दोनों घुटने लावण्य युक्त मनोहर एवं चमकीले हैं । परम मनोहर चरण कमल रत्नजटित नूपुरों से मंडित हैं। लाल-लाल चरणतल चिन्हों से सुशोभित हैं। चरणों की अँगुलियों के नख चन्द्रमाओं के समान प्रतीत हो रहे हैं । प्रियतम, अपूर्व शोभामय विलक्षण प्रेम और आनन्दवर्षा करते रानी के नेत्रों के सम्मुख ललित त्रिभंगी में खड़े हो गये । रानी तो ध्यानस्थ होकर डूब गयी ।

अरे भाई ! यह सब तो होना ही है । जिन प्रियतम के पलकान्तर वियोग से ही रानी का एक-एक निमेष सौ-सौ युगों के समान प्रतीत होने लगता है, उन श्रीकृष्ण का गुणगान रानी सुने और उन का हृदयस्थ महाभाव सीमाबिन्दु तक न स्पर्श करले यह तो सर्वथा असंभव ही है । पूर्ण चन्द्र के दर्शन कर समुद में ज्वार न आवे - क्या यह संभव है ?

रानी को सुख-सिन्धु में डूबी देख शुक-सारिकाऐं अपने को कृत-कृत्य अनुभव करती हुईं अप्रतिम आनन्दोच्छलन की ऊर्मियों में डूबने लगीं ।

देखो ! देखो ! भावाविष्ट हुए शुक एवं सारिका की दशा तो देखो ! इनके नेत्रों से झर-झर अश्रु बह रहे हैं और रोमाञ्च से इनके पंख उत्फुल्ल हैं । बार-बार इनमें कम्पोदय हो रहा है और स्वरभंग से वाणी स्वर-सीमा का उल्लंघन कर अपभ्रंश हो रही है । तदपि, बेसुरे फटे कण्ठ से भी जो माधुर्य झर रहा है, उसे कण्ठजन्य सुरीलापन स्पर्श ही नहीं कर सकता । इस तुरीय नादामृत में स्वयं सरस्वतीदेवी का ही अस्तित्वगत साफल्य निहित है । लो, आत्म विभोर शुक-सारिका कृष्ण-कृष्ण का नाम संकीर्तन करते हुए नृत्य करने लगे ।

परन्तु अरे, अरे, यह क्या ? यह कैसी भाव लहर आयी ? रानी तो इस गायन और नृत्य में विरक्ति प्रकाश कर रही हैं । वे तो सारिका की, शुक की चन्चु ही बन्द कर देने को उद्यत हो उठी हैं ।

जो रानी श्रीकृष्ण के लिये सोती हैं, जागती हैं; जिनकी सम्पूर्ण चेष्टाएँ ही संघटित होती हैं मात्र प्रियतम के सुख को केन्द्र बिन्दु बनाये रखकर ही; श्रीकृष्ण-सुख-सम्पादन की अदम्य लालसा ही जिनका अस्तित्व है, वे किशोरी रानी शुक-सारिका को कृष्ण-नाम-संकीर्तन से, कृष्ण-गुणगान से निवृत्त करें - यह तो महत्ती आश्चर्य ही है ।

परन्तु अनुपमेय है यह प्रेमतत्त्व । इसकी गति सीधी नहीं, परम वक्र है। इसका न तो कोई शास्त्र है, न ही यह किसी विधि-निषेध की मर्यादा में ही बँधा है ।

लो सुनो ! रानी क्या कह रही हैं, इन शुक-सारिका से । वे कह रही हैं - "सारिके बहिन ! तुम ने और हे कृष्णसखे शुकराज ! तुम दोनों ने मुझे असीम सुख-सिन्धु में डुबाने के लिये प्रियतम प्राणवल्लभ का नाम एवं गुण-गान सुनाया । अहा ! आनन्द सिन्धु की उछाल लेती तरंगों में मैं डूब गयी । मेरे सम्मुख तुम लोगों के अनुग्रह से प्राणवल्लभ की प्रत्यक्षवत् भावमूर्ति प्रकट हो गयी । उन्हें अपने सम्मुख पाकर सुख की ऊँची से ऊँची हिलोरों में मैं अनवरत डूबती रही । मैं तुम्हारा कैसे अभिनन्दन करूँ ? मेरे पास तुम्हारा ऋण चुकाने को कुछ भी तो नहीं है । हे मेरे प्राणसखा शुकराज ! तुम इसे सत्य मान लेना, भला । जब भी तुम कृष्ण-गुण-गान करते हो मेरे प्राणवल्लभ सर्वथा सत्यांश में मेरे पास आ ही जाते हैं । भले ही कोई उन्हें नहीं देख पावे, परन्तु जैसे ही कृष्ण नाम राधा के कानों में जाता है प्रियतम राधा के नेत्रों के सामने ही हो रहते हैं । वे कहीं भी हों,

किसी अवस्था में हों उन्हें मेरे सम्मुख आना ही पड़ता है परन्तु हे मेरी प्राणसखी सारिके ! प्रियतम को अपने नाम-गायन एवं श्रवण से वह सुख नहीं मिल पाता जो उन्हें राधानाम श्रवण एवं गुणगान से मिलता है । अतः मेरे प्राणप्यारे सखा, शुक ! तुम भी अपना क्रम बदलकर मुझे मात्र राधानाम और राधा-गुणगान ही सुनाया करो ।"

"यह सत्य है कि लोग मुझे मदगर्विता कहेंगे । तुम भी मुझे पगली, मूर्ख समझ सकते हो । सम्पूर्ण व्रजमण्डल में जो भी यह सुनेगा कि राधा अपने गृह-पक्षियों से अपना ही नाम-गुण-कीर्तन कराती है, वे सभी मुझे आत्मश्लाघालोलुपा समझेंगी, मानेंगी । सभी को यह उपहासास्पद लगना स्वाभाविक ही है । कोई भी प्रेमिका क्या स्वयं का नाम श्रवण करने में हर्षित हो सकती है ? वह अपने ही गुण-गान सुनने में रुचि रखे क्या इस पर लोग आक्षेप नही लगावेंगे ? मेरी प्राणोपम सखियां मेरा अपयश होता देखकर तुम दोनों को ऐसा करने से मना भी कर सकती हैं । परन्तु मेरी प्यारी सारिके ! तुम उन सखियों का कहना सर्वथा मत मानना।"

"देखो ! मेरे हृदय के अन्तरंग से अन्तरंग भाव का तुम दोनों पर मैं प्रकाश कर दे रही हूं। सुनो, किसी को दिखे चाह नहीं दिखे, परन्तु वे मेरे प्राणवल्लभ मेरे चतुर्दिक सदैव ही निवास करते हैं। वे एक क्षण के शतांश काल में भी मुझे छोड़कर नहीं रह सकते । उन्हें मेरा नाम और मेरा गुणगान परम प्रिय लगता है, अतः मेरे चतुर्दिक वही होना चाहिये । तुम सभी अच्छी प्रकार जानते हो कि प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दर का नाम मुझे अतिशय प्रिय है । वह मेरे कर्णपुटों में ही नहीं, श्रवणद्वारों से मेरे हृदय में उतरकर मेरे रोम-रोम में अमृत भर देता है। परन्तु क्या राधा निज सुख के लिये अपने प्राण-प्रियतम के सुख की उपेक्षा कर दे ? शुकराज ! मेरे लिये यह असह्य है । उनका सुख ही मेरे लिये सर्वोपरि है । बस तुम तो 'राधा-राधा' नाम और 'राधा-यश' का गान करो। वे सुनकर सुखी हों, मुझे यही अभीष्ट है।" यह कहते कहते रानी पुनः भाव-सिन्धु में डूब गयी । और रानी का आदेश पाकर शुक-सारिका उन्मत्त हुईं गान करने लगीं -

राधा करावचित पल्लव वल्लरीके
राधा पदांकविलसन्मधुरस्थलीके
राधा यशोमुखरमत्त खगावलीके
राधा विहार विपिने रमतां मनोमे ।

और भगवती राधारानी को अपने प्रियतम की प्रसन्नता उनके भाव-वपु के आनन-सरोज को प्रफुल्लित करती दृष्टिगोचर हो जाती है, इससे अधिक उन्हें चाहिए ही क्या ?

यह है राधा महाभाव - अतिशय रमणीय, परम पवित्र, प्रियतम-सुख सुखिया और दिव्यातिदिव्य स्वसुखवांछा की लेशात्मक भावना से भी सर्वथा सर्वांश में विरहित । मत्सुख की कल्पना के लेश से भी सर्वथा शून्य जिसका जीवन हो, वही इसमें प्रवेश करने का साहस और उत्साह करे ।

इस लीला दर्शन के पश्चात् पू० गुरुदेव सदा कभी उच्चस्वर में, कभी बोलचाल की भाषा में और कभी मन्द स्वर में 'राधा' नाम का ही उच्चारण अथवा गायन करते थे ।

एक आश्चर्य की घटना और हुई । पू० गुरुदेव को इस लीला की अनुभूति प्रातः काल ही हुई थी, और संध्या के समय श्रीपोद्दार महाराज अपने आप उनके पास आये । उन्हें भी ऐसी ही लीला का उन्मेष हुआ था । वे आकर कहने लगे- "स्वामीजी ! आज आपको मैं एक अति विचित्र बात बतला रहा हूँ । क्या यह भी कभी उचित लगेगा कि निकुंजेश्वरी श्रीराधारानी अपने निकुंज में शुक-पिक-सारिकादि को सतत राधा-राधा नाम रटने को कहें अथवा राधा-गुणगान करने की प्रेरणा स्वयं निजमुख से दें ।"

"यह तो स्पष्टतया आत्मश्लाघा ही कही जायगी एवं सज्जन मनुष्य भी ऐसा करना उचित नहीं मानते । परन्तु लोक-व्यवहार कुछ भी उचित-अनुचित कहे भगवती श्रीराधारानी अपने निकटतम विहंगमवृन्द को यही आग्रहपूर्वक प्रेरणा देती हैं कि वे उनके चतुर्दिक 'राधा-राधा' नाम ध्वनि ही किया करें अथवा राधायश-स्तुति पाठ करें । और इस कथन की प्रेरणा कैसी सुन्दर है कि क्योंकि उनके प्रियतम प्रकट-अप्रकट सदैव उनके चतुर्दिक विद्यमान रहते हैं अतः उनके सुख-विधान के लिये यही सर्वोत्तम है । अपने प्रियतम के सुख-विधान के लिये राधा को आत्मश्लाघा जैसा महागर्हित कार्य भी करने में परम उत्साह है ।"

श्रीपोद्दार महाराज के मुख से सायंकाल ही यह बात सुनकर पू० गुरुदेव को परम विस्मय हुआ । जो लीला पू० गुरुदेव नें प्रभातकाल में देखी थी, उस लीला को श्रीपोद्दार महाराज ने साररूप में सांयकाल उनके सम्मुख कैसे प्रकट करदी ? यही उनके लिये परम विस्मय का हेतु था । क्या श्रीपोद्दार गहाराज सर्वज्ञ हैं ? क्या ये मेरे मन में स्पन्दित होने वाले प्रत्येक भाव-विचार तक की

जानकारी रखते है। ? क्या मुझे जो भी दर्शन अनुभूति अथवा भाव-प्रकाश होता है, सभी के ये द्रष्टा, साक्षी रहते हैं ? क्या ये अन्तर्यामी हैं ?

पू० गुरुदेव ने अपनी सभी ऊहापोह श्रीपोद्दार महाराज के सम्मुख रख दीं। और यह भी प्रकट कर दिया कि प्रातःकाल ही इस लीला का उन्मेष उनके मानस में हुआ था । वे यह निश्चय भी कर चुके हैं कि भविष्य में अब वे मात्र 'राधा-राधा' ही बोला करेंगे ।

श्रीपोद्दार महाराज उस दिन प्रसन्न होकर चले गये परन्तु पश्चात् एक-दो दिन में आकर कहने लगे कि आप पहले षोड़शनामात्मक महामंत्र जपा करते थे । इसके पश्चात 'राधे कृष्ण राधे कृष्ण' नाम जपने लगे । अब आप कहते हैं कि मैं 'राधा राधा' जपूँगा सो आगे आप इसे भी मत छोड़ दीजियेगा।

पू० गुरुदेव श्रीपोद्दार महाराज की चेतावनी पर बहुत ही तुष्ट हुए । पू० गुरुदेव ने उत्तर दिया - "आप निश्चय मानिये यह 'राधा' नाम अब मुझसे देह रहते नहीं ही छूटेगा और यदि किसी कारण से छूट गया तो यह छूटना किसी अनन्त रसप्लावन की ही भूमिका का सृजन करेगा।"

मंजुलीला भाव : मालिन, नापित, गृहरजक, एवं हड्डिप-कन्याओं की सौभाग्य गाथायें (मंजिष्ठा की कथा)

यह ब्रह्मपर्वत है । इसकी ही छाया में वृषभानुपुर अवस्थित है । इसके पार्श्व में ही रुद्रपर्वत फैला है जिसकी तलहटी में नन्दग्राम है और किंचित् दूरी पर गिरिराज नारायण पर्वत स्थित है । इन महाभाग्यवान तीनों पर्वतों की उपत्यकाएँ, इनके सम्पूर्ण गुहा-गह्वर, वन-प्रान्तर व्रजेन्द्रनन्दन के बिम्बारुण अधरों पर विराजित वेणु की महामोहन स्वरलहरी से सदा मुखरित होते रहते हैं ।

इसी ब्रह्मपर्वत से निस्सृत एक परम निर्मल गिरिस्रोत वृषभानुपुर के पार्श्व से बहता हुआ कानन में चला जाता है और सुदूर आगे जाकर यह यमुना में मिल जाता है । मानों यह ब्रह्मपर्वत अपने शोभाकोश की अपरिसीम रससम्पदा ही वृषभानुपुर के चरणों में समर्पित करने जा रहा हो, इस प्रकार स्वच्छ, शीतल, सुमिष्ट और भगवद्भक्त ब्रह्माजी के मानसतल के समान

निराविल जल से कल-कल, छल-छल निनाद करता, यह निर्झर स्रोत नित्य ही वृषभानुपुर ग्राम के चरण पखारता रहता है । इसी निर्झर में विकसित शोभाशाली पद्मों की गन्ध वहन करता मन्द समीर वृषभानुपुर के राजमहल में प्रवेश करता किशोरीरानी के श्रीअंगों का संस्पर्श पाकर कृतकृत्य होता रहता है । कितना भाग्यवान है यह निर्झर कि किशोरीरानी जब अपने महल की छत पर खड़ी होकर इसकी ओर अपनी दृष्टि घुमाती हैं तो इसके विकसित पद्मों की शोभा उनके नेत्रकोणों में समा जाती है । नानाविध कुसुमों के सुवास से उनकी घ्राणेन्द्रियाँ भर जाती हैं और इसकी कलकल निर्मल ध्वनि से उनके कान आनन्दित हो उठते हैं । यह गिरिस्रोत मानो वृषभानुजा कृष्णप्रिया किशोरी के कर्ण, त्वक् , रसना, दृगंचल एवं नासापुटों- सभी इन्द्रियों का आनन्द-संवर्धन करने के लिये ही ब्रह्मपर्वत से समस्त सामग्री लेकर अवतरित हुआ हो और सतत सेवा के उद्देश्य से निरन्तर प्रवहमान रहता हो ।

इसी गिरिस्रोत के किनारे नागरिक बस्ती से हटकर कुछ दूरी पर वनक्षेत्र में रजक बस्ती है । रजकों ने गिरिस्रोतों के किनारे-किनारे स्थान-स्थान पर प्रस्तर खण्ड आरोपित कर रखे हैं । यह स्थान रजकघाट करके ग्राम में प्रख्यात हैं । इस घाट की भी अपरिसीम शोभा है । सचमुच धन्य हैं ये कदम्ब, प्रियाल, पनस आदि वृक्षसमूह जिनके हृत्तलों में ऐसे दिव्य भावों की लहरें हैं । "श्री प्रियतम-प्रिया, वृषभानुजा किशोरीरानी के वस्त्रों को प्रक्षालन करने वाले रजकों को प्रणाम- इस गिरिस्रोत जिसमें रानी के वस्त्र स्वच्छ किये जाते हैं- के जल को प्रणाम । इन रानी के चिन्मय शोभास्वरूप वस्त्रों को भी शतशः प्रणाम ।" इस प्रकार ये सभी वृक्ष अपने शाखाग्ररूप मस्तकों पर विविध पुष्प-फलों की पूजोपचार सामग्री लिये झुकझुक कर सभी को प्रणाम निवेदन करते रहते हैं । ये अपने को कृतार्थ अनुभव कर रहे हैं । सभी वृक्ष फूले हैं, इनके विकसित पुष्पों पर भ्रमर झंकार कर रहे हैं ।

इन वृक्षों में अतिकमनीय पुरट तारों से खचित पट्ट डोरियाँ बँधी हैं। इन डोरियों में रजक गीले वस्त्र सुखा देते हैं । इन सभी वृक्ष समूहों की ऐसी पवित्रतम चर्या है कि जब रजक वस्त्र धोकर सुखाने इनके पास लाते हैं तब तो ये अपनी डालियाँ निम्न झुका देते हैं जिससे रजकों को वस्त्र सुखाने में कहीं कोई कठिनाई नहीं हो और जैसे ही पट्ट डोरियों में वस्त्र गिरे, ये डालियाँ उन्नत कर लेते हैं जिससे पवन पूर्णतया पूरे वेग से वस्त्रों को सुखा सके ।

क्यों न हो, ये अज्ञानी जड़ जो नहीं। अपितु ये तो इतने सौभाग्यशाली हैं कि इनके सौभाग्य के दर्शन-श्रवण करने वाले का भी अज्ञान-तिमिर सदा-सदा के लिये विनष्ट हो जाता है । अहो ! जिनके अन्तस्तल में रानी के स्वरूपभूत वस्त्रों की, उनको धोने वाले रजकों के चरण-सेवन की लालसा भरी है, उन्होंनें ही तो यथार्थ में ज्ञान के सारसिद्धान्त को हृदयंगम किया है । किशोरीरानी के सेवकों के चरण-सेवन परायण इन द्रुम समूहों में कहाँ है तम एवं अज्ञान का अंश । अपितु सेवा-समर्पण का आदर्श स्थापित कर, जगत् के तमोनाश अज्ञान निवारण के लिये ही इन्होंनें इस वृन्दावनधाम में वृक्षयोनि को अंगीकार किया है । यही सत्य है।

ग्रीष्म का उदय ही हुआ है । सचमुच वन की इस ग्रीष्म के समय भी कैसी निराली शोभा है । अगणित निर्झरों के झर-झर शब्दों में झींगुरों की झंकार आच्छादित हो गयी है। गिरिस्रोतों से, प्रपातों से असंख्य जलकण निरन्तर उच्छलित हो रहे हैं। उनसे सिक्त वनस्थली, स्निग्ध हुई समस्त तरुश्रेणी अद्भुत रूप से सुशोभित हो रही है । सर्वत्र हरित् तृणों का आस्तरण सा बिछा है । सरिता, सरोवरों और गिरिस्रोतों के शीतल जल से सिक्त वायु अत्यंत सुशीतल हो रही है।

कुमुद, पद्म, नीलोत्पल- अनेकानेक पुष्पों के किंजल्क को अपने अंचल में भरकर वन की, भानुपुर की परिक्रमा करती वायु प्रत्येक वनवासी का स्पर्श कर रही है । इसीलिये किसी भी काननवासी को ग्रीष्म के ताप की अनुभूति नहीं हुई है।

बाल रवि को उदय हुए किंचित् काल ही व्यतीत हुआ है। फिर भी रवि में तप्तता का प्रारंभ हो चुका है। थोड़े काल पश्चात तो रवि का प्रखर तेज भूमि को तपाने लगेगा। रजकिनी कन्या मंजिष्ठा तट पर अपनी सखी रंगरागा के साथ शीघ्रता पूर्वक वस्त्र धो रही है। रजकों के प्रमुख की कन्या मंजिष्ठा रानी की लाड़िली सखी भी है। और यह रंगरागा तो वस्त्रों के धूमिल हुए रंगों को इस प्रकार पुनः रँगकर चमकीला करती है कि यह पहचान ही नहीं हो पाती कि वस्त्र पुरातन हैं। रंगरागा के पिता ही वृषभानु बाबा के राजमहल के सभी वस्त्र कल्प एवं रंग करते हैं और मन्जिष्ठा के पिता इन्हें धोकर, मैलरहित स्वच्छ करते हैं। किशोरीरानी के वस्त्र तो ये ही दोनों सखियाँ सदा से स्वच्छ कर, रँग कर नित्य ही मंजुलीला को सौंप आती हैं। ये दोनों ही अपने पिता की इकलौती पुत्रियाँ हैं। हाँ, इनके भाई नन्दनन्दन के प्राणप्रिय

सखा हैं। परन्तु वे रजक का कार्य नहीं करते। उन्हें तो अपने सखा के संग आज यहाँ इस वन में, कल वहाँ उस वन में घूमने एवं क्रीड़ाएँ करने से ही अवकाश नहीं मिलता। ये दोनों सखियाँ वृषभानुराजदुहिता की विशेष सेविका मंजुलीला की भी अति विश्वासपात्रा सखियाँ हैं। अतः यदा-कदा मंजुलीला इन्हें प्रियतम नीलसुन्दर का पीत परिधान भी स्वच्छ करने को दे देती हैं। यह पीत-परिधान रानी निशाभिसार करते समय शीघ्रता से वस्त्र परिवर्तन करते हुए भूल से पहन कर चली आती हैं और रानी का नीलपरिधान प्रियतम पहन जाते हैं। इस प्रकार पलटे हुए इन वस्त्रों को मंजिष्ठा को तत्क्षण ही धोकर शीघ्रतापूर्वक सुखा कर देना होता है । क्योंकि रानी जब पाकरचनार्थ नन्दभवन जाती हैं तो यह वस्त्रसुबल पत्नी कुन्दलता को नन्दभवन में सौंपना होता है और उनसे रानी का नीलाम्बर लेना होता है। आज भी मंजुलीला ने उसे यह परिधान शीघ्रतापूर्वक स्वच्छ कर देने की सेवा सौंपी है। सूर्योदय हो चुका है और उसे अपने कार्य की अतिशय त्वरा है।

इस पीताम्बर में न जाने क्या विलक्षणता है, वह इसे ज़्योंही स्पर्श करती है, न जाने कैसे परमनिर्मल प्रीति के भावों में वह खो जाती है। अनेक बार ऐसा हुआ है कि वह इस पीताम्बर को लेकर राजमहल से रजकिनी घाट की ओर चली है, परन्तु उसके पैर उसे भटकाकर ले गये हैं वन की किन-किन सुरम्य घाटियों में।

इस पीताम्बर को लिये जैसे ही वह किसी एकान्तस्थल में पहुँची नहीं कि इसमें से प्रकट हो जाते हैं, वे नीलसुन्दर वनमाली - प्रेम के परम देवता, और वे उसे अनियंत्रित लिये चले जाते हैं ब्रह्मपर्वत की उपत्यकाओं को पार कराते गिरि की परम सुरम्य पुष्पों से लदी महकती घाटियों में। यह तो मंजुलीला उसके पीछे टोहक पक्षी लगा देती है अन्यथा तो उसके लिये उसे ढूँढना ही असंभव हो जाय। और कठिनाई यही है कि ये पीताम्बर से प्रकटे नीलम किसी अन्य को दिखते भी नहीं, बस उसे ही दिखते हैं अतः यदि वह किसी से कहे भी कि उसका हाथ पकड़कर प्रियतम नीलम उसे ले गये थे तो लोग उसे पागल ही कहेंगे। जागतिक दृष्टि में तो वे प्रत्यक्ष रहते हैं अपने सखाओं के साथ ही। उसका सहोदर भ्राता भी यदि सुने तो उसके इस प्रलाप को झुठला देगा क्योंकि कन्हैया तो उसके साथ उस समय निरन्तर एकरस क्रीड़ा करता रहा है।

मंजुलीला उसकी सभी परिस्थिति को सही समझकर भी सामंजस्य कर लेती है। फिर भी काल तो व्यतीत हो ही जाता है और वस्त्र अनधुला ही रह जाता है। त्वरावश कभी-कभी तो मंजुलीला को ही वस्त्र धोना पड़ता है।

सेवा में प्रमाद तो बहुत ही बड़ा दोष है। सेवा तो सेवा है। यदि कोई भाव-सुख में डूब जाय तो वह सेवा के तो सर्वथा ही अयोग्य हो जाता है। सेवा तत्सुखार्थ है और भाव मत्सुखार्थ। अत: उसे तो भाव से बचकर सेवा में ही तत्पर रहना चाहिये, यही उचित है। वह भी अति सावधानीपूर्वक इस भावावेश से शत्रु की तरह बचना भी चाहती है। परन्तु वह अवश हो जाती है। पीताम्बर का स्पर्श ही उसे प्रियतम प्राणसुन्दर के स्पर्श के समान ही स्पन्दित जो कर देता है और तब वह पीताम्बरधारी की भावमूर्ति के साथ अनियंत्रित हुई चल पड़ती है सुरम्य वन-वीथियों की ओर। प्राणधन नन्दनन्दन उसके नयनों की काली पुतलियों को अपना निवास स्थान बना लेते हैं। वे उसके कर को अपने सरोरुह सदृश हाथों से पकड़ लेते हैं और खींचते से ले चलते हैं। वे गिरि उपत्यकाओं में चढते हैं, उस समय वह उनके स्कंधदेश को पकड़े रहती है। किसी घनेवृक्ष के नीचे बिछे पुष्पास्तरण पर वे दोनों बैठते हैं। वह थकी हुई होती है, नीलसुन्दर अपनी जंघाओं का तकिया लगाकर उसे लेट जाने को विवश कर देते हैं।

वह उनके अनिन्द्य सुन्दर आननसरोज से झरते रूप-लावण्य का पान करती रहती है। और तब वे अपनी कटि में खौंसी मुरली को निकालकर उसे अपने अधरों में रख लेते हैं। फिर तो ऐसा अमृतपूर का प्रवाह बह चलता है कि वह पूर्णतया उसमें निमग्न ही हो जाती है। कुछ क्षण के लिये तो उसकी चेतना ही विलुप्त हो जाती है। चेतना का प्रकाश भी होता है तो जड़ पुत्तलिका की भाँति वह अपलक नेत्रों से बस उनके मुख की ओर निहारती ही रह जाती है। अहा, कितने प्रेम के वे क्षण होते हैं !

वह तो युगों-युगों तक बिना व्यवधान इसी प्रकार उनका मुख ताकती रहे, परन्तु अचानक निगोड़े टोही पक्षी चीख उठते हैं- "मंजिष्ठा, मंजिष्ठा .... पीताम्बर....पीताम्बर....।" इन टोही पक्षियों की कर्कश ध्वनि से ही उसे अपनी सेवास्मरण हो आती है। इस सेवास्मरण के साथ ही वह आश्चर्यवती विस्फारित नेत्रों से देखती है कि वह तो इस वन में सर्वथा एकाकिनी ही है। प्रियतम नीलसुन्दर तो उसके साथ हैं ही नहीं। अब प्राणों में पश्चात्ताप की प्रबल अनुभूति लिये वह पुन: रजक घाट की ओर लौटने को उत्सुक होती है

परन्तु उसे तो पथ का अनुसंधान ही नहीं रहता। ये पक्षी ही किसी प्रकार उसे पथ-निर्देश करके घाट पहुँचाते हैं। किस कठिनाई से वह उस वस्त्र को स्वच्छ कर पाती है। और जब सुखाने की पारी आती है तो वे ही नीलसुन्दर उनके अपने ही पीताम्बर को उसके दोनों विपरीत छोर पकड़ कर उसे उसके साथ ही सुखाने लगते हैं।

अहा ! महाराज नन्द के लाड़िले सुपूत, यशोदारानी को मातृपदयश का दानकरने वाले, प्रतिवर्ष जन्मदिवस पर महामहोत्सव से रञ्जित होने वाले, अपनी विलक्षण लीलाओं से अपनी सभी प्रेमिका गोप-वधुओं को आनन्दित करने वाले, अपने स्पर्श मात्र से विषभरी पूतना को नष्ट करने वाले, दूसरों की त्रुटियों से सदा अनभिज्ञ रहने वाले, शकट के खण्डित होने पर भी उससे अक्षत बच निकलने वाले, गोकुल के महा-महा-पुण्य विशेष की मूर्त्ति, निरन्तर अपनी प्रिया किशोरीरानी का आनन्दवर्धन करने वाले, सम्पूर्ण वन-कानन को अपनी प्रेम-प्रीति की रंगशाला बनाने वाले, हृदय एवं चित्त को चुराने में शूरता दिखाने वाले, चर-अचर सबको अपने वंशी निनाद से विमोहित कर देने वाले, प्रियतम प्राणवल्लभ मानो उसके संगी रजक हों इस प्रकार अपरिसीम सुखदायिनी प्रेमलीला करते हुए अपना ही पीताम्बर सुखाने के लिये उसके विपरीत दोनों छोर पकड़ कर उसके नयनों में नयन डालकर कैसी मधुर मुसकान बिखेरते हैं - वह क्या कहे !

उस समय उसका प्रेमसुख अवर्णनीय हो जाता है । अपने प्रियतम की वह अविस्मरणीय मुख-छवि, वह अप्रतिम विलक्षण रूपराशि मंजिष्ठा को इतना मुग्ध कर देती है कि मंजुलीला को या तो स्वयं या अपनी किसी संदेश-वाहिका सखी को भेजकर ही वह पीताम्बर रजकघाट से मँगाना पड़ता है - अन्यथा तो उसकी सेवा सदा अपूर्ण ही रहे, और वह पीताम्बर सुखाने की लीला निर्बाध अनन्तकाल पर्यन्त चलती ही रहे। वह तो उसे देने वृषभानुपुर जा ही नहीं पावे।

अहा ! यह कैसा महाश्चर्य है कि इस प्रकार प्रति दिवस लगातार प्रमाद घटित होते रहने पर भी मंजुलीला उसी को वह पीताम्बर पुनः स्वच्छ कर लाने की सेवा प्रदान करती है। कितना असीम प्रेमानुग्रह है उस पर उसका; अन्यथा कोई अपने कार्य में ऐसा व्यवधान प्रतिदिन ही क्यों सहेगा ?

उसने मंजुलीला से अपनी असमर्थता और दशा रो-रोकर अनेक बार वर्णन की है, परन्तु वह उसके अपराध को मानती ही नहीं और मुसकाकर

उसके विषाद की उपेक्षा कर देती है । एक दिवस उसने अति साहस कर अपने मन का अतिशय गुप्त मनोरथ भी मंजुलीला को बताया था - "बहन ! क्या यह संभव है कि जब भी रानी का नन्दनन्दन के साथ परिणय महोत्सव हो, रानी की रजकिनी दासी के रूप में वृषभानुबाबा उसे भी दहेज में दे दें।" मंजु बहन ने उसका मनोरथ गंभीरतापूर्वक सुना था एवं रानी की स्वीकृति दिलाने का आश्वासन भी उसे दिया था। इसके पश्चात् तो उसने अपनी मैया से भी अनुनय-विनय कर यह बात मनवाली थी कि उसके विवाह की कल्पना ही त्याग दी जाये। उसे तो यावज्जीवन रानी की रजकिनी दासी ही रहना है। उसकी मैया ने उसका अत्यंत आग्रह देखकर यह बात उसके बाबा के सामने भी रख दी एवं उसके बाबा ने यह बात एक दिन एकान्त में महाराज वृषभानुजी से भी निवेदन कर दी। उनकी स्वीकृति पाकर जब उसके बाबा ने यह सूचना मैया द्वारा उसे दी तब तो उसके हर्ष का पारावार ही नहीं रहा। मानो उसे त्रिलोकी का निर्बाध एकछत्र स्वाराज्य सिंहासन ही मिल गया हो, अथवा अपुनर्भव गति ही प्राप्त हो गयी हो।

वृषभानुबाबा द्वारा स्वीकृति हो जाने की बात जब उसने मंजुलीला बहन को बतलायी तब तो मंजुलीला ने उससे बहुत ही तीखा विनोद किया था -"अरी तू कैसी दासी बनेगी री, तू तो जैसे ही नन्दनन्दन का कोई भी वस्त्र छूएगी, बस पगली होकर वन-पहाडों में दौड़ती फिरेगी। फिर वृषभानुजा तुझे ढूंढने में दिन रात भले ही एक करें। नन्दभवन के सभी पक्षियों का बस एक ही कार्य होगा कि तुझे ढूँढते फिरें। अवश्य ही तू दासी नहीं उनकी स्वामिनी बनने का मनोरथ पाले है ! प्रियतम नीलमणि तो रजक बने तेरे धोये कपड़े सुखावें और रानी तेरे जड़िमा भावग्रस्त अंगों का मर्दन-संवाहन करें। क्यों यही तेरा मनोरथ है न ? और वह खूब ठिठोली करती हँस रही थी।

रंगरागा की कथा

मंजुसखी की बातें सुनकर उसका हृदय लज्जा से भर जाता है और आज पुनः जैसे ही उसे मंजुसखी ने मुंसकाकर पीताम्बर शीघ्र स्वच्छ कर लाने का आदेश दिया है वह इस अपनी सखी रंगरागा को पकड़ लायी है। यह भी तो उसकी नाते की बहिन ही है, उसकी सखी है। यह रानी के वस्त्र कल्प करती है, रँगती है।

-- ---- ---- अपनी सब दशा और व्यथा भी कह दी है। परन्तु हुआ तो सर्वथा विपरीत ही। रंगरागा तो उसकी कथा सुनते-सुनते ही अधीर होकर रोने लग जाती है - "अरी बहिन। मैं कैसी अभागी हूँ कि रात्रि-दिवस अनवरत अविराम 'कृष्ण-कृष्ण' रटती हूँ फिर भी वह सुधा-प्रवाह, वह प्रेमामृत निर्झर प्रियतम नीलमणि मेरे नयनगोचर ही नहीं होता। मैं रँगने के लिये लायी रानी की नीली साड़ी से मुख ढाँपे पड़ी रहती हूँ , कुन्तलराशि पीठ पर बिखरी रहती है, कभी भी वेणी रचना नहीं करती कि किसी दिवस जाग्रत में नहीं, तो स्वप्न में ही सही वे मेरी बिखरी केशराशि को स्पर्श कर लेंगे, परन्तु हाय री, मुझ अभागिन को तो उनका दर्शन ही नहीं मिल पाता, संस्पर्श की तो कल्पना ही कहाँ ?"

रंगरागा के नेत्र सजल हो उठते हैं, वाणी रुद्ध हो जाती है, वह थर-थर काँपने लगती है, मानो उस पर हिमपात हो उठा हो। उसके अँगो से भावावेशवश प्रस्वेद की धारा बह चलती है। वह पुनः सिसकियाँ लेती हुई कहती है - "एक दिवस नलिनी एवं सुगन्धा से जो रानी के अंगों में उबटन करके घर लौट रही थीं, मैंने रानी के अंगों से उतरी पूर्वचर्चित केसर माँग ली थी । रानी से पुरस्कार में मिली उनकी पूर्व पहनी नीली साड़ी, उनकी रक्तिम चोली, उनका लहँगा, सभी आभूषण जो उन्होंने मुझे यदा-कदा वार-त्यौहारों में दिये थे, मैंने अंगों में यथास्थान पहन लिये । वह केसर भी मैंने अपने अंगो-अंगों में मल ली । इस प्रकार सजी-धजी मैं दिवस-निशा पर्यन्त अष्टप्रहर बन-बन घूमती रही । कहीं कोई रानी की अंगचर्चित केसर की गंध से लुब्ध भ्रमर ही प्रियतम नीलमणि को रानी के वन-आगमन की मिथ्या सूचना ही दे दे और वे उस मिथ्या सूचना के वशीभूत हुए मेरे पास चले आवें, और रानी ही समझकर दो बोल प्यार के बोल जावें, बस, बहिन ! जन्मान्तरों की मेरी साध पूरी हो जावे, मैं उनके चरण पकड़ कर लिपट जाऊँ उनसे अपने पूर्वकृत अनन्त जन्मों के अपराधों की क्षमा माँग लूँ, उनके चरणों की रज से अपनी माँग भर लूँ, इस प्रकार चाहे छद्म से ही सही, बस जीवन में एक बार उनके अंगों से लग तो जाऊँ, बहिन री ! बस एक बार उनके सुकोमलतम चरण तालुओं को अपने सीमन्त पर रखकर सुहागिन हो जाऊँ री, फिर यावज्जीवन वे मुझे भले ही कभी न मिलें, कभी न दिखें, परन्तु हाय हतभाग्य। बहिन! कितनी ही बार यह सब छद्म करके भी उनकी मुझे एक भी प्रीति-झलक अब तक नहीं मिल पायी री ।"

"बहिन री ! 'कृष्ण-कृष्ण' आवृत्ति करती हुई मैं रातभर कदम्ब कुञ्जों में, वन में बैठी रहती हूँ । सोचती हूँ, अहा ! कभी तो वंशी बजेगी ? अहा ! कभी तो मेरे श्रवणरंध्रों में वंशीरव प्रवेश करेगा ही ? हाय ! जीवन में कभी तो मैं वंशीरव , उस सुधा प्रवाह, उस अमृत-निर्झर के उद्गम को भी देख पाऊँगी ? अहा ! वह न जाने कैसी मधुरध्वनि होगी ? और वे स्वयं न जाने कितने सुन्दर होंगे ? सखि री ! क्या मेरे जीवन में कभी वे क्षण भी आयेंगे ?"

रंगरागा के नेत्रों से झर-झर करता हुआ अनर्गल अश्रुप्रवाह बह उठता है । मंजिष्ठा अंचल से उसके अश्रुमार्जन करती है किन्तु उसकी आँखें तो मानो निर्झर ही हो उठी हों, पुनः अश्रुपूरित हो उठती हैं । अश्रुधारा बहने लगती है तो रुकती ही नहीं । मंजिष्ठा उसे ज्यों-ज्यों सान्त्वना दती है, परिणाम उलटा होता है, उसकी व्याकुलता और बढ़ जाती है ।

रंगरागा मंजिष्ठा के चरणों में लिपट जाती है - "इस पीताम्बर से वे तेरे सम्मुख प्रकट होते हैं तो आज उन्हें मेरे सम्मुख प्रकट कर दे न बहन ! मैं जन्म-जन्म की दासता का पट्टा तुझे लिख देती हूँ । मात्र एक बार ही उन्हें प्रकट कर दे । अहा एक बार, जीवन में मात्र एक बार उन महांमरकतद्युति अँगों से झरती शोभा के दर्शन करा दे, उस नवकैशोर का जीवन में बस एक बार समागम हो जाय, उस मोरमुकुटी मयूरपिच्छ-सुशोभित-भाल को एक बार मेरे दृष्टि पथ में ला दे री ! स्वप्न हो या जागरण, दिवस हो या रात्रि, बस एक बार ही वह श्यामज्योत्स्ना मेरे नयनों को उद्भासित कर दे, उस लहरें लेते रूपसागर में एक बार तो अवगाहन करादे, उन चंचल श्यामल लहरियों में नाचती-नाचती बस प्राण विसर्जन कर दूँ, यह कहती रंगरागा मूर्च्छित हो जाती है ।

अब मंजिष्ठा इस विरहिनी की क्या सहायता ले ? वह तो मंजिष्ठा को सम्हालना दूर उसे और उद्वेलित करना चाहती है, जिससे नन्दनन्दन प्रकट हो जावें और उसका उनसे मिलन हो जाये ।

भाग्यवती एवं पुण्यपुंजा की कथा

मंजिष्ठा की तो मात्र पांच-छः ही अन्तरंग सखियाँ हैं । अब इन हड्डिप-कन्याओं भाग्यवती एवं पुण्यपुञ्जा की वार्ता सुनो । ये दोनों तो सबसे

ही अधिक पगली हैं । इनमें भाग्यवती तो ऐसी भाग्यशालिनी है कि वह जहाँ भी जायेगी उसे नन्दनन्दन के चरण चिन्ह ही अंकित दृष्टिगोचर होते रहते हैं । वह स्वच्छता कार्य क्या करेगी ? कार्य करने के लिये जो बुद्धि की सजगता चाहिये, उसका तो उसमें सर्वथा ही अभाव हो गया है । उसकी बुद्धि नन्दनन्दन को छोड़कर जगत को पकडें तब न ? हाँ पवनदेव अवश्य उस पर कृपालु हैं जो सभी उपवन और बाग बगीचों की अस्वच्छता उड़ाकर एक दिशा में एकत्रित कर देते हैं और तब अग्निदेव की एक चिनगारी उन सब सूखे पत्तों को और कूडे कचरे को उन पत्तों के साथ जलाकर भस्म कर देती हैं । बस उसका कार्य तो प्रकृति ने ही कर दिया है।

हाँ, वह झाड़ू लेकर पुण्यपुञ्जा के साथ निरे प्रभात अरुणोदय के पूर्व ही सेवा के लिये नगर में चली अवश्य आती है । परन्तु ज्योंही अरुणोदय हुआ उसे नन्दनन्दन के चरण चिन्ह दिखने लग जाते हैं।

अब तो उसकी दशा देखने ही लायक हो जाती है । उसके तन के अणु अणु से आनन्द झरने लगता है। दिव्योन्माद के लक्षण उसमें प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगते हैं । कण्ठ गद्‌गद हो उठता है । जैसे वह अनन्त काल तक के लिये परितृप्त हो गयी हो, वह उस रज में लोटने लगती है, परन्तु उन चरण चिन्हों को बचाकर । उसकी उन्मत्तता उत्तरोत्तर बढती ही जाती है। यह दशा तो भाग्यवती की हुई ।

अब पुण्यपुञ्जा को देखो ! भाग्यवती के निर्देश से वह उपवन से पुष्प लाने जाती है । और जैसे ही वह मल्लिका के पार्श्व में पहुँचती है उसे नवीन नील-नीरद के समान नीलश्याम-कान्ति-वपु अपना जन्मों-जन्मों का कान्त नयनगोचर हो जाता है । वह किसी प्रकार दृष्टि फेरकर यूथी की लताओं की ओर दृष्टि पात करती है परन्तु वहाँ भी वह कृष्ण बन्धु अपनी सौन्दर्य-सुधा-वर्षिणी मन्द मुसकान से उसे मोहित करता खड़ा दिखता है । अब वह क्या करे, वैजयन्ती लता की ओर दौड़ती है, परन्तु उसकी सौन्दर्य-सुधामयी मुसकाती छबि वहाँ भी उसके दृष्टिपथ का भूषण हो उठती है । रक्त, पीत, हरिताभ जिन जिन पुष्प लताओं पर वह दृष्टिपात करती है सर्वत्र वे ही वे उसे अपने अंक में भरने को लालायित खड़े मुसकाते दिखते हैं। वहाँ से लौटती है तो भाग्यवती के पार्श्व में उसी स्थल पर जहाँ प्रथम बार उसे वे चरण चिन्ह दिखे थे, उसके प्राणों के प्राण खड़े दृष्टिगोचर हो जाते हैं ।

नवीन विद्युन्माला सा चमकीला मनोज्ञ पीताम्बर पहने, निर्मल शारदीय पूर्णचन्द्रमा सा समुज्ज्वल वदन और अधरों पर सुन्दर मुरली धारण किये, चंचल वायु द्वारा हिल्लोलित मयूर पिच्छ को मस्तक पर फहराते, घुँघराली अलकावलि से उसके चंचल चित्त को प्रीति बंधन में जकड़ते वे खड़े अपनी मुसकान बिखेर रहे होते हैं ।

इधर भाग्यवती को चैन कहाँ ? वह अपने झर झर बरसते नेत्रों से पहले तो उन चरण चिन्हों पर अर्घ्य, पाद्य समर्पित करती है और तब अपने वक्षस्थल सें चर्चित चन्दन उतार-उतारकर उसे अश्रुजल से आर्द्र कर उन पर लेप करना प्रारंभ कर देती है । अपनी वेणी में गुम्फित पुष्प उतार-उतार कर उन पर चढ़ाने लगती है ।

इधर अपने मुख से अस्फुट उच्चारण करती, प्रेमाश्रुओं के प्रवाह से अपना वक्षस्थल भिगोती वह पुण्य पुञ्जा भी लौट आती है । उसे तो चरण चिन्हों के स्थान पर वे स्वयं ही खड़े दृष्टिगोचर हो रहे हैं, अतः वह तो उन्मादिनीसी मानो उनके चरणो में गिर पड़ी हो, भूलुंठित हुई मूर्छित हो जाती है ।

नगर के लोग उनके माता पिता को सूचित कर देते हैं, परन्तु यह कोई एक दिवस की घटना तो है नहीं, प्रतिदिन ही ऐसा होता है । कभी-कभी तो उन्हें अपने निवास-कक्ष से सटी फुलवारी में ही नन्दनन्दन के चरण-चिन्ह दिख जाते हैं, बस उन्हें उसी क्षण आत्म विस्मृति हो जाती है । उनका अन्तः करण श्याम-प्रेम-पूरित हो उठता है और वे प्रेम-मंगल-घट बन जाती हैं । प्रीति छल-छल बहने लगती है उन दोनों के नेत्रद्वारों से । कुंचित अलकें बिखर जाती हैं उनके भाल पर । परिधान का भान नहीं रहता उन्हें । निर्निमिष विस्फारित नेत्रों से चारों ओर देखने लगती हैं, उन्हें तो चतुर्दिक सर्वत्र सब रूपों में प्रियतम ही प्रियतम दिखते हैं । अतः या तो वे भू लुण्ठित मूर्च्छित रहती हैं अथवा "प्रियतम ! प्राणवल्लभ!!" कहतीं, भुजा पसारकर उन्हें आवेष्टित कर लेने के उद्देश्य से दौड़ती-भागती रहती हैं, यही उनकी नित्य की दशा है ।

अनेक बार तो दोनों इतनी उन्मादिनी हो उठती हैं कि उनका अन्न, पानी और निद्रा सर्वथा लुप्त हो जाती है । जब पाँच-सात दिन जल भी ग्रहण नहीं होता तो घबरायी उनकी मातायें रानी को सूचित करती हैं । सभी सखियों सहित रानी उन्हें देखने आती हैं ।

रानी को देखते ही तो उनका आनन्द सहस्रगुना हो जाता है । वे दोनों ऐसा नृत्य करती हैं, जैसा सम्पूर्ण कलाओं की अधिष्ठात्री वाग्देवी भी नहीं कर पावें । फिर एक "प्राणेश्वर आये थे री, निशा में प्रियतम मेरे घर आये थे री, और दूसरी "मेरे भी - मेरे भी ..." की रट लगाती रानी का हाथ पकड़ भूमि में कोई-न-कोई चिन्ह दिखाने लगती हैं । भूमि में स्पष्टतया कोई चिन्ह उभरा न होने पर भी उन्हें तो प्रियतम के दोनों चरणों के सभी चिन्ह वहाँ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते ही हैं । और यदि कोई भी व्यक्ति प्रतिवाद कर दे कि यहाँ भूमि की धूलि है,कोई पदचिन्ह नहीं है और उनकी भावदशा किसी भी हेतु से बदल जाय, फिर तो प्रिय-वियोग की ऐसी असह्य वेदना उनके हृदय में धधकती है कि उनका जीवन ही बचेगा या नहीं संदेह होने लगता है । अत: सभी, न दिखते हुए भी उनके दिखाये पदचिन्हों को देखने में ही उनकी जीवन रक्षा मानकर हाँ में हाँ मिलाते हैं । देखो ! दोनों बेसुध कटे कदली स्तंभ की तरह रानी की गोद में गिर पड़ी हैं । गंभीर मूर्च्छा में निमग्न उनके सिर पर रानी हाथ फेर रही हैं। एक का मस्तक रानी की एक गोद में और दूसरी का मस्तक दूसरी गोद में। अनेक उपचार प्रक्रियायें करने पर किसी प्रकार उनकी मूर्च्छा भंग हो पाती है ।

उनके माता-पिता भी क्या करें । अब नन्दनन्दन से उनके विवाह की तो कल्पना ही कैसे की जाय ? वृषभानुबाबा एवं किशोरी रानी से उनकी यही प्रार्थना होती है कि इन पगलियों को भी अपनी दासी,अनुदासी मानकर स्वीकार कर लें । संभव है नन्दभवन के वन-उपवनों की, नन्द बाबा की गोशाला के विशाल प्रांगण की स्वच्छता सेवा करती हुई ये दोनों चरणदासियाँ भी नन्दनन्दन की एकाध झाँकी पा लेंगीं और उस अखिल भुवन मोहिनी मुसकान से प्रभावित हुई अपने जीवन में संभव है किंचित् धैर्य धारण कर लें, किंचित् भी इनका भाव संवरित हो जावे। सेवा तो उन्हें यावज्जीवन करनी ही है, चाहे यहाँ करें, चाहे नन्दग्राम में करें । कोई हड्डिप युवक तो इनसे विवाह करने से रहा । ये ऐसी विलक्षण किशोरियाँ हैं कि यदि कोई युवक भूल से भी इनका अंग संस्पर्श कर ले तो उसे ऐसा अनुभव होता है मानो वज्रपात ही हो गया हो । उसके सर्वांग में ऐसा भीषण दाह हो उठता है कि वह मरणान्तक कष्ट से छटपटा जाता है । हां, कोई नारी भले ही इन्हें संस्पर्श करे । हड्डिप समाज में तो यह बात सर्वत्र बच्चों-बच्चों को ज्ञात है अत: इनके विवाह का समाज में तो प्रश्न ही नहीं है।

मणिकी की कथा

अब मंजिष्ठा की चौथी सखी माणिकी की वार्ता सुनो । वह भी अतिशय पगली है । यह मालिन कन्या माणिकी वन माला, वैजयन्ती, बाहुभूषण, अँगुलीयक, चरणभूषण, शिरोमुकुट, सभी आभूषण मात्र पुष्पों से ही निर्माण करती है । प्रत्येक आभूषण में उसकी सर्वोच्च एवं अभिनव मौलिक कला सृष्ट होती है । एक दिन भी पुनरावृत्ति नहीं, नित्य अभिनव नूतन छवि, नवीन कौशल से कलाकृतियाँ निर्मित होती हैं, कहीं किञ्चित् भी बासीपना नहीं ।

रानी के अंगों में उसके पुष्पाभरण जैसे फबते हैं, वैसे तो बहुमूल्य रत्नजटित स्वर्णाभरण भी नहीं फबते और प्रियतम के आनन्द का तो पार ही नहीं रहता जब रानी उसकी रचित वैजयन्ती तथा वनमाला उन्हें पहनाती है। नन्दभवन में भी अच्छे से अच्छे कलाकार माली परिवार हैं जिनका पीढियों से माला रचना करना ही व्रत है, परन्तु प्रतियोगिता में इस माणिकी की तुलना में कोई ठहर ही नहीं पाता । उसकी माला में जो भाव और सौन्दर्य, जो कला और सुघड़ता होती है, पुष्पों के चयन की जो प्रक्रिया होती है, पुष्पगंध का जो मेल होता है, वैसा अन्यत्र असंभव ही लगता है । अनेक मालियों ने उसकी वनमाला में गुँथे पुष्पों को ही उसी कला से रचना कर उसकी अनुकृति करने की भी चेष्टा की है, परन्तु वह भावसौन्दर्य उन मालाओं में आया ही नहीं जो उंसके हाथों पुष्पों के गुँथने में आता है । जैसे पुष्प ही उसके सेवक हों, उसके कहने से ही गन्ध प्रसार करते हों, उसकी रुचि से रूप धरते हों, इतना अधिकार है उसका मालाकारी कला में ।

वह भी बहुत ही प्रेमहठी है । उसका हठ है कि पुरानी वनमाला उसे मिलनी ही चाहिये । अब नन्दनन्दन वनमाला पहनकर नन्दभवन चले गये और उनके सेवक उस वनमाला को इधर-उधर कर दें अथवा नन्दनन्दन ही किसी अन्य को वनमाला दे दें तो वह अनमनी हो जाती है । उसका यही प्रेम हठ है कि चाहे नन्दभवन में ही वनमाला परिवर्तित हो, यशोदा मैया ही श्रृंगार करें, चाहे सखागण वन में श्रृंगार करें वह उतारी वनमाला पुनः उसे ही मिल जाये । इसके उपरान्त कोई कितनी ही मालायें, कितने पुष्पाभरण ले जाये, वह टोकरियाँ भर-भर कर मालाएँ दे देती है ।

अतः मंजुलीला को नन्दभवन पुष्पाभरण भेजते समय पुरातन वनमालाएँ लौटाने का कड़ा निर्देश देना होता है । सुबल को भी यह निर्देश है कि वन में नवीन श्रृंगार करते समय पुरातन मालायें सम्हालकर उसे लौटा दे । इधर प्रियतम श्रीकृष्ण भी उसकी मालाओं के ही दीवाने हैं । सखागण अपनी रुचि से फूल भले ही उनकी चूडा में खौंस दें, पुष्पाभरण तो वे उसका निर्माण किया हुआ ही पहनते हैं । कोई अन्य माली द्वारा रचित माला उनके सम्मुख करके देख ले, वे तुरन्त ही पहचान लेते हैं कि यह माला माणिकी द्वारा विरचित है या नहीं । जिसे पिया माने, वही सुहागिन । इसीलिये रानी को पाक निर्माण के लिये निमंत्रित करने नन्दभवन से आते समय कुन्दलता देवी सभी पुरानी वनमालाएँ, पुराने पुष्पाभरण इस पगली माणिकी के लिये लेकर आती हैं और नवीन पुष्पाभरण, वैजयन्ती, वनमाला टोकरी भर कर ले जाती हैं । पुष्पों की भी वह विलक्षण पारखी है । चित्र-विचित्र अलौकिक सौरभयुक्त पुष्प वह कहाँ-कहाँ से एकत्रित करती है, और उनकी गंध एवं रंग -परियोजना करके जो वैजयन्ती एवं वनमाला वह बनाती है वह विलक्षण सौरभ-समन्वित होती है । उसका रूपालंकरण भी अलौकिक ही होता है ।

अब यह दूसरी बात है कि रानी एवं रानी के प्रियतम नीलसुन्दर स्वयं इतने असीम सुन्दर हों कि उनके रूप के सम्मुख, अथवा नन्दभवन की भगवान नारायण की प्रतिमा अथवा वृषभानुपुर की भगवती त्रिपुरसुन्दरी की प्रतिमा के सामने उसके पुष्पाभरण फीके लगें । फिर भी उसकी मालाओं के रचना-कौशल की अद्वितीयता पर कोई भी अँगुली नहीं उठा सकता ।

आओ देखें ! वह पुरानी पुष्प मालाओं का, पुष्पाभरणों का क्या करती है ?

अहा ! कैसा विलक्षण सुन्दर देश है यह ! यहाँ सदा ही शरद और वसन्त ऋतु ही रहते हैं । प्रपातों से असंख्य जलकण निरन्तर उच्छलित हो रहे हैं । अगणित निर्झरों के झर झर शब्द झींगुरों की कर्ण कटु झंकार को अपने भीतर आत्मसात् कर ले रहे हैं । इन असंख्य प्रपातों से उच्छलित जल कणों से पृथ्वी सिक्त होकर अति सौंधी-सौंधी भूमि गन्ध सर्वत्र प्रसरित कर रही है । चतुर्दिक हरित् तृणों का आस्तरण सा आस्तृत है । सरिता, सरोवर और प्रपातों की लहरों पर बहती हुई वायु अत्यंत शीतल हो रही है । वह कुमुद, पद्म, नीलोत्पल आदि अनेक पुष्पों के किंजल्क को अपने आँचल में भरकर वनदेवी की परिक्रमा कर रही है । विविध विचित्र विहंगमों का कलरव, मृगों

का मनोहारी संचरण, मयूरों का सुन्दर रव, भ्रमरों का मधुर गुंजन, कोकिलों एवं सारसों का कूजन, अप्रतिम श्री यहाँ अक्षय निवास करती है ।

इस वन में माणिकी एक पुष्पित कदम्ब के आलवाल पर आसीन है । चतुर्दिक तरुराजि राशि-राशि कुसमों के भार से नमित है। कण-कण से सौन्दर्य का स्रोत प्रसरित हो रहा है । उसके चारों ओर राशि-राशि मयूर पिच्छ पड़े हैं । नव पल्लव झुक झुक कर आह्वान कर रहे हैं - "आओ सखि माणिकी ! मुझे वृषभानुजा प्रिया किशोरी और उनके प्राण-प्रियतम वनचन्द्र के श्री अंगों पर स्थान देकर कृतार्थ कर दो न ? चयन किये सुमनों के ढेर लगे हैं । उनके रूप में द्रुम वल्लरियों के हृदय का आल्हाद, आल्हाद की बिखरी हुई लहरें मानों बाट देख रही हैं - अहा ! हमारे प्राणसारसर्वस्व नील सुन्दर हमें धारण कर अलंकृत होंगे । सौभाग्य ! महासौभाग्य !! न जाने कब अपनी रानी का श्रृंगार करने निकुञ्जेश्वर लालायित हो उठें ।

परन्तु अभी तो माणिकी का ध्यान पुष्पाभरण निर्माण करने की ओर है ही नहीं । वह तो अपने चतुर्दिक कल की उतारी हुई रानी की कुम्हलायी, रतिकाल में मर्दित, उलझी, टूटी, वन मालाओं, खण्डित पुष्पाभरणों के मध्य अपना चित्त डुबोये है । वह एक एक पुरानी पुष्प माला को अथवा आभरण को बहुत ही मनोयोगपूर्वक देख रही है ।

इन वनमालाओं में लगी कुंकुम एवं केसर, चन्दन एवं कस्तूरीपंक को उतार उतार कर संचित कर रही है, एक कटोरी में । वह प्रत्येक पंक को पहले सूँघती है, सूँघते ही उसे पता चल जाता है कि यह केसर पंक तो रानी के अंगों की है और यह नील सुन्दर प्राणप्रियतम की । साथ ही उसे यह भी ठीक अनुभव होता रहता है कि यह पंक दोनों के अंगों में लगकर युगपत् मिश्रित हो चुकी है । कौनसे वस्त्राभूषण में किधर प्रियतम के अंगों की गंध आ रही है और किधर प्रिया के अंगों की गंध, इसकी भी वह पूर्ण पूर्ण पारखी है । अत: वह वनमाला के प्रत्येक पुष्प से पंक संचित करती है । इस पंक को वह तीन पृथक् पृथक् कटोरियों में रखती जाती है । एक में रानी के अंगों की पंक को, दूसरी में प्रियतम की अंगों की पंक एवं तीसरी में दोनों की मिश्रित। फिर इसको वह अपनी सभी सखियों में वितरित करती है और इसकी सखियाँ कौन-कौन हैं, पता है ? ये मालती लतायें, ये बेला, चमेली, चम्पा, शंखालु, ये यूथी, वैजयन्ती, मल्लिका, रक्त पीत हरिताभ असंख्य पुष्प- लताएँ ही तो उसकी सखियाँ है । जानी-अनजानी सभी लताओं को वह इस चंदन

पंक से चर्चित करती है । फिर जो भी शेष बचता है उसे वह अपने अंग में चुपड़ती है। उस उन्मादिनी का यह पंक चुपड़ना भी विशिष्ट है । वह अपने दक्षिण अंग में तो नन्दनन्दन के अंगों की पंक चुपड़ती है और वाम अंग में रानी के अंगों की गंध चुपड़ती है । मध्य अंग में वह दोनों के अंगों के मिश्रण को लगा लेती है । ये लताएँ ही तो इसकी परम प्यारी सखियाँ हैं ये सभी इसके लिये तो पूर्णतया जीवन्त हैं । अब इन अपसारित वन-मालाओं को वह इन्हीं सबको पहना देती है । जैसे ही ये लताएँ इन मालाओं को पहनती हैं, मानो प्रसन्नता से खिल उठती हैं, सुरभित पुष्पों का विकास उनमें फूट पड़ता है ।

और देखो ! इस तमाल से वह लिपट गयी । इसे तो यह तमाल दिख ही नहीं रहा है। वह तो इसे अपना भाव-धन, प्राणवल्लभ नील सुन्दर ही समझ में आता है । उसके सामने त्रिभंगललित प्रियतम श्यामसुन्दर की मानस मूर्ति है, अश्रु झर रहे हैं, और वह अपने हृदय की बात अपने प्रियतम को सुना रही है ।

बंधु तुमि से आमार पराण ।
देह मन आदि तोमार सौंपेछि जाति कुल शील मान ।
भक्तेर आराध्य धन हे कालिये ! जोगीर जीवन धन ।
गोप गोपालिनि हय अति दीना ना जानि भजन पूजन ।
कलंकी बलिया डाके सब लोके ताहाते नाहिंक दुःख ।
तोमार लालागिया कलंकेर हार गलाय परिते सुख ।
सती वा असती तोमाते विदित भाल मंद नहिं जानि ।
हे प्राण प्रियतम पाप-पुण्य मम तोमार चरण खानि ।

"मेरे प्रियतम तुम मेरे प्राण हो । मैंने अपना सर्वस्व-देह, मन, जाति, कुल, शील एवं सम्मान सभी तुम्हारे चरणों में समर्पण कर दिया है । हे श्याम सुन्दर ! मैं भली प्रकार यह भी जानती हूँ कि आप भक्तों के परमाराध्य सर्वस्व निधि हैं और योगियों के जीवन निधि सर्वसिद्धि-स्वरूप हैं । हम गोप ग्वालिनियाँ तो अत्यन्त नगण्य दीन एवं अति तुच्छ हैं । हम न आपका पूजन ही करना जानती हैं, न ही हमें भजन पद्धति का ही कुछ ज्ञान है । सारे विश्व में हमारी पहचान कुल कलंकिनियों के रूप में है, परन्तु क्योंकि यह

कलंक मात्र आपको लेकर है अतः हमें इसका दुःख तो सर्वथा ही नहीं है, अपितु यह हमारे गले में आभूषण के समान हमें सुखदायी ही लगता है । यह हमारे लिये शोभारूप है । हम सभी गोपांगनाएँ सती हैं अथवा असती हैं, यह आप भली प्रकार से जानते हो, हम तो अपना भला-बुरा कुछ भी नहीं जानतीं । हम तो इतना ही जानती हैं कि आप के चरणों में ही हमारे सब पाप-पुण्य विसर्जित हैं ।

कभी यह मन ही मन कहने लगती है :-

"नीलम रे ! सर्वथा नगण्या दीना हूँ मैं, रे। परन्तु बन्धु ! मेरे प्राणों के दो टुकडे हो चुके हैं, एक नीलद्युति तू और दूसरा पीतद्युति रानी । परन्तु मेरे प्राणवल्लभ ! कदाचित् मैं विक्षिप्त हो चुकी हूँ । क्षणार्ध में मुझे तुम दोनों दो भिन्न सत्ताओं के रूप में दिखते हो और दूसरे ही क्षण दोनों मात्र एक ही सत्ता हो जाते हो । रानी के यौवन का लास्य तुम्हारा मनोरंजन करता अवश्य है, परन्तु पृथक् सत्ता कहाँ है उसकी ? मुझे तो यही नित्य प्रतिभात होता है कि उस लास्य के रूप में भी तुम ही, तुम ही एकमेव लीलायमान हो। तुम्हारे नील एवं पीतद्युति कलेवरों पर मेरा सर्वथा अधिकार भले ही नहीं हो परन्तु प्राणवल्लभ ! तुम दोनों से जो अथाह ममता मेरी है, उस ममता के पश्चात् अधिकार अर्थ ही क्या रखता है ? तुम्हारें इस नीलकलेवर पर और तुम्हारे ही अंक में समाहित तड़िल्लता-सी रानी में मेरी तो सम्पूर्ण प्राणि-पदार्थ और परिस्थितियाँ आत्यन्तिक विलय को प्राप्त हो चुकी हैं । यह अनुभूति कभी भी मेरा साथ ही नहीं छोड़ती, प्राणरमण !"

अहा ! कैसी विशुद्ध राग से भरी है, यह । तभी न इसका नाम माणिकी है। प्राणसुन्दर नीलमणि एवं किशोरी रानी से वह कोई छुपी थोड़े ही है । वन-विहार करते वनचारी प्रियतम और वनदेवी प्रिया कभी किसी वनलता से, कभी तमाल से, अशोक से लिपटी उसे ढूँढ ही लेते हैं, उस समय दोनों निष्पन्द चुपचाप उसके पास चले आते हैं, फिर प्रियतम उसकी बिखरी कुन्तलराशि को अतिभाव से गुम्फन कर उसमें अपने हाथ का नीलकमल उसकी वेणी में खौंस देते हैं और प्रिया अपने सिन्दूर से उसकी माँग लाल कर देती हैं । फिर दोनों ही युगल दम्पति चुपचाप गहन वन में चले जाते हैं । अहा! उस दिन तो उसके आनन्दोन्माद का पार ही नहीं रहता । उस दिन वह इतनी मालायें गूँथती है कि चाहे सारे नन्दभवन को पुष्पमहल बना दो । मालायें गूँथने में उसे श्रम थोड़े ही होता है । वह तो वन में बैठी-बैठी

सुन्दर मालाओं का भाव भर करती है आभूषणों की सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम आकृतियाँ ही अपने भावदृष्य में देखती है और लतायें ढ़ेरों पुष्प गिराती जाती हैं और स्वत: ही उसके भावानुसार पुष्प मालाकार रूप ग्रहण करते रहते हैं । वह पुष्पों में कभी भी छिद्र नहीं करती । पुष्पों के वृन्त अपने आप गुम्फित होते हैं और माला अपना रूप ग्रहण कर लेती है । इसी प्रकार सभी पुष्पाभरण निर्मित होते हैं ।

अब मंजिष्ठा भला इस पगली से क्या राय ले ? एक दिवस उसने अपनी समस्या उसके कानों में डाली तो पहले तो उन्मादिनी-सी वह बहुत काल तक उसके नेत्रों में नेत्र गड़ाये देखती रही, फिर अट्टहास कर हँस उठी । कहने लगी - "बहन ! मेरे नयनों में नयन डालकर देख ! ये मालती, ये कदम्ब, ये तमाल, यह चम्पा, यह जूही, यह चमेली, सभी अम्बर हैं री । भिन्न-भिन्न वस्त्रों को धारण किये मात्र वही तो हँस रहा है । वह स्वयं ही तो अपनी प्यारी के लिये गजरे बनता है, वही वैजयन्ती, वही वनमाला स्वयं ही बन जाता है । परन्तु मुझसे वह छुप थोड़े ही पाता है ? टोकरी भी वही होता है और मुझे दूती बनाकर कहता है तू मुझे रानी के कंठ से लगा दे, तू मुझे उसके चरणों में, बाहुओं में पुष्पाभरण बनाकर बाँध दे, वह असमोर्ध्व प्रेमी है । सर्वत्र ठगने के लिये नाम मेरा कर देता है ? माणिकी के पुष्पहार सर्वसुन्दर हैं ? अरे सर्ववंचक ! मात्र एकमेव तू ही तो सर्वसुन्दर है । तेरे अतिरिक्त जो है सब असुन्दर ही असुन्दर है । अरी ! यह पीताम्बर भी वनमाला ही है । वनमाला में फूल गुम्फित होते हैं और इसमें फूलों के तार गुम्फित हैं। कपास का पुष्प ही रूई होती है, इसी प्रकार रेशम का फूल रेशम हो जाता है, तो सर्वत्र एक मात्र वही, वही है री !"

"बस, तू मेरा एक कहना मानले बहिन ! तू पीताम्बर लेकर मेरे पास आजा और मैं तेरे सब गन्दे अहंकारभरे नारी वस्त्र तो उतार देती हूँ और पीताम्बर पहना देती हूँ । पीताम्बर पहनते ही तू हूबहू निर्विवाद नील सुन्दर हो जायगी । मेरे इन बड़े-बड़े नयनों के दर्पण में देख । तेरे रोम-रोम को मात्र वस्त्र बनाकर पहने, वह मेरा नीलम ही नीलम है । इसीलिये तो मेरी तेरी मिताई है, अन्यथा मेरा किसी धोपानी से क्या लेना-देना ?"

"अरी तो तू मेरा कहना मान ले । पीताम्बर पहन तो सही । फिर तो मैं तुझे पुष्पहारों से सजाकर रानी के पास भेज दूँगी । अरी सच कहती हूँ, रानी तुझे देखती ही रह जायेगी । फिर तू नन्दनन्दन बनी गायें चराती

रहना, मैं तेरा सखा हो जाऊँगी । और जब नीलम साक्षात् दूसरे जीवन्त नीलम को अपने सम्मुख ठीक प्रतिस्पर्द्धी के रूप में देखेगा तो वह चकित हो जायेगा । ऐसा सजा दूँगी कि स्वयं यशोदा एवं नन्दजी भी नहीं पहचान पावेंगे । और तब उसका अभिमान चूर चूर हो जायेगा । अभी तो वह एकाकी एकमेव है, तब न इतराता है । जैसे ही एक से दो हुए, जिन्हें भी उसने तड़पाया, रूलाया वे तेरी ओर आ जायेगीं । फिर सब अभिमान त्याग हम कहेंगीं वैसा ही वह करना प्रारंभ कर देगा और वह पगली गहनवन में अट्टहास करती चली जाती है । थोडी ही देर में उसका अत्यंत करुण स्वर सम्पूर्ण वन में निनादित हो उठता है। "नीलम रे ! प्राणवल्लभ रे !" गिरि उपत्यकाएँ उसके स्वर की तीव्रता से प्रतिध्वनि कर उठती हैं । उसकी वाणी में इतनी विरह-वेदना और आन्तरिक विकलता रहती है कि वृक्ष झर झर रो उठते हैं । कोई भले ही अपने में समाधान कर ले कि उसकी तीखी ध्वनि के स्पन्दन से वृक्षों के पत्रों में संचित ओस कण झरते हैं, परन्तु मध्याह्न में भी कहीं भला ओस-कण होते हैं ? और जहाँ वृक्ष होते ही नहीं, मात्र रसतरंगिणी यमुना अथवा गिरिस्रोत की सैकत ही सैकत सर्वत्र आस्तृत होती है, अथवा दूर्वा का विस्तृत चरागाह होता है, उस पगली का क्या, वह तो वहीं चीख उठती है :- "नीलमणि मेरे ! प्राण वल्लभ रे !! तो निरभ्र वियत् अश्रु बरसाने लगता है ।

अब मंजिष्ठा क्या उसकी बात मानकर पीताम्बर पहनकर श्यामसुन्दर बनी घूमती फिरे ? क्या कोई सद्कुलवती रजकिनी अपने यजमान के वस्त्र पहनेगी ? फिर राजकुल के रत्नजटित वस्त्र भला उन्हें कौन धोने देगा ?

पर उस पगली को इतनी बात कौन समझावे ?

प्रेमवती एवं नर्मदा की कथा

अब इसी माणिकी की दूसरी मालिन बहन प्रेमवती की कथा सुनो । देखो प्रेमवती क्या कर रही है ?

"यह विलक्षण देश है । यहाँ एक ही देश में एक भाग में ग्रीष्म है, तो दूसरे भाग में शरद है, एक भाग में वसन्त है तो पास के ही दूसरे भूखण्ड में यहाँ पावस है । यहाँ प्रभात में ग्रीष्म है तो उसी भूखण्ड में मध्याह्न में पावस

आ जाती है । सायंकाल शरद है तो निशा में शिशिर का प्रकोप हो जाता है ।

तो इस भूखण्ड में इस समय वर्षा ऋतु धरा को अलंकृत कर रही है । देखो ! दिक्सुन्दरियाँ सौदामिनी के अलंकार धारण किये पावस का अभिनन्दन स्वागत कर रही हैं । इसे सम्मान देने के लिये सूर्यदेव ने अपने चारों ओर वलय का निर्माण कर लिया है । आकाश बार-बार रह रहकर जैसे दुन्दुभी बजा रहा हो, नाद करके जयघोष कर रहा है । आनन्दमत्त पवन प्रत्येक कुंजद्वार पर गवाक्ष जालों के समीप राशि-राशि बूँदों की मुक्ता बिखेरकर अपना उल्लास व्यक्त कर रहा है । वृन्दाकानन को आकाश में वितान तानकर इसने विभूषित किया है ।

दिव्यातिदिव्य स्थान विशाखा कुञ्ज है । गिरिराज परिसर के आकाश में निविड़ नील अम्बुद राशि छायी हुई है । रह-रहकर विद्युत कौंध रही है और फिर मेघ गर्जन का तुमुल नाद परिव्याप्त हो जा रहा है । सखी प्रेमवती वन के सर्वसुन्दर भाग में पुष्प का झूला हिण्डोला निर्माण करने में दत्त-चित्त है।

निकुंज के उत्तर में पुष्पित कचनार महक रहे हैं। पूर्व में अगस्त्य और सहिजन के वृक्ष हैं। पश्चिम में अशोक की पंक्तियाँ हैं । मध्य में पारिजात का उन्नत शाखा किये वृक्ष है । यहाँ सभी वृक्षों पर लताएँ लिपटी हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानों वृक्ष जाति ही वल्लारियों की दासता में सिर झुकाये नतमस्तक है। वल्लरियाँ पूर्णतया विकसित पुष्पावलियों के गुच्छों से लदी हैं ।

पारिजात वृक्ष पर ही प्रेमवती हिण्डोला डालने में दत्तचित्त है । पारिजात वृक्ष की एक स्थूलकाय डाल उत्तर की ओर फैली है । पारिजात के चतुर्दिक् दूर-दूर तक हरी-हरी दूर्वा का ऐसा सुभग आस्तरण है कि यही प्रतीत होता है, मानो अति सुन्दर परम सुकोमल हरी मखमल का आस्तरण बिछाया हुआ हो । प्रेमवती का दिवसपर्यन्त यही कार्य है, जहाँ भी उसके कोई सुन्दरतम भूखण्ड दृष्टिपथ में आया, वह झूला निर्माण करने में जुट जाती है । या तो वह हिण्डोला निर्माण करेगी, अथवा यदि उसे कोई चतुर्दिक् पुष्पों से लदा कुंज दीख आया तो उसके मध्य सुन्दर पुष्प शय्या निर्माण कर देगी ।

उसे स्पष्ट अनुभव है कि उसके प्राणरमण नीलमदेव, किशोरीरानी के संग जब झूले पर विराजित होगें तो सखियाँ उल्लासवश तेज झौंटा देंगी ही । और स्वाभाविक ही किशोरी अन्तर् से अनुपम उल्लसित होते हुए भी मृदुल-पीत कलेवरा होने से श्रम को सह नहीं पावेंगीं । उनके अरुणिम

कपोलों पर, भालदेश पर निश्चय ही उन्मिषित हो उठेंगीं अगणित प्रस्वेद कणावली ।

नील सुन्दर प्राणवल्लभ के नेत्र-सरोज अपनी प्रिया के इतने श्रमभार को सह लें यह भी सर्वथा-सर्वथा संभव नहीं है अत: वे अविलम्ब झूले से कूद पड़ेंगे और अपनी प्यारी रानी को भुजपाश में बाँध ही लेंगे । उस समय प्रियतम को झूले के निकट ही किसी न किसी पुष्प शय्या की निश्चय ही आवश्यकता होगी । अत: झूला निर्माण करते समय वह पार्श्व में ही पुष्प मन्दिर भी बनायेगी, क्योंकि परमोदार प्राणवल्लभ अपने पीताम्बर के छोर को स्वयं हाथों में लेकर किशोरी रानी का अतिशय प्यारपूर्वक स्वेद-मार्जन करेंगे । और स्वेद-मार्जन करते-करते वे कहीं रानी के बिम्बफल से ओष्ठाधरों पर, उनके रक्तपद्म जैसे द्युतिमान कपोलों पर प्रीतिचिन्ह अंकित कर दें तो .. इसीलिये उन्हें सखियों से किंचित् ओट की आवश्यकता होगी ही। इन सभी योजनाओं पर विचार करती उसने अपनी सखि नर्मदा का सहयोग लिया है और अहा, कैसा अप्रतिम सुन्दर झूला निर्माण किया है । पारिजात वृक्ष की डालियों से सुदूर वृक्षों तक मेघवर्णी पुष्पों का जाल बुनकर इन्द्रनील द्युति चन्द्रातप निर्माण किया है । मध्य में पीले कर्णिकार पुष्पों की ऐसी रेखायें निर्मित की हैं जिससे जीवन्त स्थिर विद्युत् का आभास हो । रचना में प्रधानता मात्र पुष्पों की है, परन्तु पुष्पवृन्तों में कुछ ज्योतिर्मयी मणियों को गुम्फित कर पुष्पों को ज्योतिर्मान् बनाने की चेष्टा हुई है । इस प्रकार झूले के चतुर्दिक् जैसे घनघोर घटा उमड़ी हो और तड़िल्लता कौंध रही हो ऐसा पुष्प वितान निर्माण किया है ।

पारिजात की डाल को पूर्णतया इन्द्रनील वर्णी पुष्पों से ढँक दिया गया है और जिन पुष्पों से डाल ढँकी है, वैसे ही पुष्पों की आकाश में भी आतप होने से डाल इस प्रकार एक वर्ण होकर व्योमातप से मिल गयी है कि ऐसा लगता है कि झूले की डोरियाँ अभ्राच्छादित व्योम से ही जुड़ी हों । झूले की डोरियाँ स्वर्णतंतुओं से गुँथी रेशम से निर्मित हैं और उसमें चतुर्दिक, माणक, नीलम एवं पुखराज, साथ ही वज्रमणियाँ भी इस प्रकार इमक रही हैं कि इनको आच्छादित करने वाले श्वेत, नील एवं रक्तवर्णी कमल जयोर्तिमान हो उठे हैं । डोरी के चतुर्दिक खिले कमलों का विलक्षण ज्योर्तिमान सुहास बिखर रहा है । यही प्रतीत होता है मानो कमल के पुष्पों को उनकी ही नालों से गूँथकर हिंडोरे की दंडी बनी है । हिंडोरे के आसन का अग्रभाग मयूर की

चंचु की तरह है और मयूर के पृष्ठ देश पर ही प्रियाप्रियतम के बैठने की चौकी है एवं पृष्ठ देश नृत्यमान ऊर्ध्व पुच्छ मयूर की तरह है । झूले की ठीक ऐसी शोभा है मानो श्वेत, रक्त और नील अरविन्दों की डोरी से किसी विशाल मयूर को बाँध कर अभ्राच्छादित नभ में उडा दिया गया हो और प्रिया प्रियतम का भार अपनी पीठ पर होने से वह धरती से किंचित ही ऊपर उठ पा रहा हो, उड़ने की चेष्टा कर रहा हो किन्तु अशक्त हो ।

यहाँ कोई पुष्पमन्दिर भी है, इसे संगुप्त रखने के लिये पुष्पमन्दिर और हिण्डोला के मध्य में एक विशाल पुष्प की पिछवाई है, इसमें भी पुष्पों के ही मेल से सुन्दर यमुना का चित्रण किया गया है । यमुना का सुदूर पर्यन्त प्रसरित रजत सैकत तट और नदी इतनी जीवन्त चित्रित है कि कोई पहचान ही नहीं पाता कि यह मात्र पुष्प खचित पिछवाई है । यमुना-नद में सुन्दर सहस्रदल पद्मों का विकास है और भ्रमरदल झंकार कर रहा है ।एक पद्मखण्ड को अपने मुख में लिये हंसिनी आगे संतरण कर रही है और पीछे हंस अपनी ग्रीवा उसकी शुभ्र शारदीय स्वच्छ पीठ पर डाले प्रीति में मुग्ध हो रहा है । कुछ हंसों की मात्र पिच्छ ही दृष्टिगोचर हो रही है क्योंकि अग्रभाग से उन्होंने जल में डुबकी लगायी हुई है। यह तो झूले की वाम भाग की पिछवाई है । इसी प्रकार झूले के पीछे के भाग में जो पुष्परचित पिछवाई है उसमें पुष्पों से ही निर्मित अति सुन्दर गिरि है, जिसके शिखर सुमेरु के समान स्वर्णिम हैं । गिरि की घाटियों में कल्पपादपों की असंख्य पंक्तियाँ हैं । धरा में कल्पप्रसूनों के अम्बार हैं । गिरि प्रांगण मणिमय है,जहाँ शिखर विशुद्ध कुन्दन द्युति से दमक रहे हैं, वहीं लघु पर्वतमाला मणिमयी है । अनेक पहाड़ वज्रमणि निर्मित हैं तो कुछ पर्वतश्रेणी माणिक्यमणि निर्मित हैं, अनेक नीलमणि के नग हैं तो कुछ पुखराजमणि के धरा पर अति सुन्दर ह्रद हैं जिनमें गजराज केलिरत हैं ।

दक्षिण पार्श्व की पिछवाई में तुलसी कानन की अभिनव सौन्दर्य राशि व्यक्त है । ऐसा प्रतीत होता है मानो वह शोभा प्रतिक्षण विस्तृत ही होती जायेगी । ऋतुराज वसन्त अपने दलबल सहित कानन को मानो पूर्णतया विजित कर चुका हो, पत्र-पत्र पर, प्रत्येक कुसुमों पर आधिपत्य जमाये वह निश्चिन्त निर्बाध सुखासीन है । शीतल, सुरभित मलय-मारुत नित्य नवीन भाव गरिमा के साथ मन्द-मन्द प्रवाहित हो रहा है । तरूश्रेणियाँ, वल्लरियाँ अपने पूर्ण सौन्दर्य में नवीन सज्जा के साथ परस्पर आलिंगित विराजित हैं ।

शतावधि पक्षीगण अपने जोड़ों सहित यहाँ-वहाँ वृक्षों पर कलरव कर रहे हैं । कुछ नरपक्षी अपनी प्रियाओं को रिझाने के लिये घूमर नृत्य करके उनकी परिक्रमा कर रहे हैं । अनेक पक्षी-युगल शुक-शुकी, सारिकाओं के सजातीय विहंगम अपनी चंचुओं को परस्पर मिलाये निराविल प्रीति का प्रकाश कर रहे हैं । जैसे शुचितम अनुराग का पयोनिधि ही उमड़ रहा हो । धरा पर हरी हरी सुकोमल प्रचुर घास का आस्तरण आस्तृत है, जिसमें चतुष्पाद नर-मादा पास-पास बैठे हैं । उनके नेत्रों में परस्पर प्रीति छलक रही है । इस पिछवाई में प्रीति के उद्दाम भावों का पशु-पक्षियों, वृक्ष-वल्लरियों, भ्रमर एवं पुष्पों के सजीव चित्रण के माध्यम से जीवन्तवत् प्रकाश किया गया है । सभी आनन्द विभोर हैं ।

इसी प्रकार हिन्डोले के वाम पार्श्व में पिछवाई से कुछ दूरी पर सखी नर्मदा ने पुष्प-मन्दिर निर्माण किया है । ऐसे सुरभित पुष्पों से यह मन्दिर निर्मित है कि मधु- लुब्ध भ्रमर उड़-उड़कर अनुपम मकरन्द का पान कर रहे हैं । इसके शिखर तो कांचन पुष्पों से रचित हैं । गुम्बद पीत और रक्ताभ पद्मों से निर्माण किये गये हैं । इसकी छत नील कमलों से निर्मित है और दीवारें श्वेत सुभग अरविन्दों से रचित हैं । इसके भीतर एक बहुत सुन्दर कक्ष में जहाँ पुष्पों की ही झालरें, फानूस लटक रहे हैं, पुष्पों की ही अतिशय सुकोमल परम रमणीय शय्या बिछी है । श्रृंगार रस की सभी सामग्रियाँ जैसे सुगन्धित पुष्पसार, आरसियाँ, मादक उत्तेजक पेय, नीलरसनिधि के भोग के लिये भिन्न-भिन्न फलों के रस सभी यथास्थान संचित हैं ।

इस प्रकार प्रेमवती एवं नर्मदा ने अतिशय सुभग हिन्डोला निर्माण कर दिया है । अपने प्रेमास्पद जीवनधन के सुख-संयोजन की योजना में अपने श्रम एवं सम्पूर्ण कौशल की इति कर देने पर भी जब तक इस के भोक्ता, रस के ग्राहक जीवनधन नील-पीत-द्युति दंपति, बृजराजदुलारे एवं भानुकिशोरी उसे भोगने नहीं पधारें तब तक तो रससमुद्र में ज्वार कहाँ ? उफान कहाँ ? मात्र स्पन्दन-शून्य प्रतीक्षा ही तो है । चरम उपलब्धि एवं प्राप्तव्य तो सभी के प्रिया-प्रियतम ही हैं ।

परन्तु विलक्षण स्वभाव है इस नीलद्युति प्रेमदेवता का । वह अपने प्रेमी के हृत्तल में वियोग वेदना की दाह उत्पन्न करता ही है । अनादि स्वभाव है यह उसका । प्रीति की लौ में अपने प्रेमी को जलता देखने में ही उसे रस आता है । वह अपने प्रेमी को भले ही क्षणार्द्ध का ही वियोग दे, परन्तु वह

क्षणार्द्ध ही प्रेमी के लिये तो युग-युग की कालावधि बन ही जाता है । वह जल से निष्कासित मीन की तरह तड़फड़ा उठता है ।

तो यही दशा हो रही थी प्रेमवती एवं नर्मदा की। उनके उरस्थल में रह-रहकर प्रियतम-प्रतीक्षा की मार्मिक व्यथा उमड़ रही है । उन्हें लगता था अब तो इन नील-पीत-द्युति दंपति का कमलमुख देखे बिना वे क्षण भर भी नहीं रह पावेंगीं । यह भावदशा उन दोनों की ही नहीं है, उन्होनें जो जीवन्त कलाकृतियाँ, ये पिछवाइयाँ एवं इनमें असंख्य जीव समुदायों की रचना की है उन सभी जीव समुदायों में भी अत्यन्त गहरी वियोग की स्फूर्ति हो उठती है । भाव की गति ही बडी वक्र है । विरह-विकल चेतन जीव समुदाय का ही नहीं इन पहाड़ एवं नदियों के भी हृदय विरह से कण-कण टूट रहे हों, ऐसा प्रतीत होने लगता है ।

हिन्डोले के मयूर की वह जीवन्त पुष्पाकृति जैसे ही सम्पूर्ण हुई, उसने अपने पंख नृत्य मुद्रा में उच्च किये, पैरों में जैसे ही नृत्य गति आई, छोटे छोटे स्वर्ण के रत्नजटित नूपुर जैसे ही खनखनाये कि उस मयूर का रोम-रोम आकुल कंठ से पुकार उठा - "हे मेरे अप्रतिम सौन्दर्य-माधुय-निधि-प्रिया-प्रियतम ! तुम कहाँ हो ? आओ, आओ न ? मेरे रोम-रोम की प्रगाढ प्रगाढ़तर होती सुन्दरता पर एक दृष्टि तो डाल दो न ? तुम्हारे नेत्रों को तनिक-सा सुख हो जाय तभी न इन मालिन कन्याओं का यह अथक अमवरत श्रम उनकी कलात्मकता अपने साफल्यबिन्दु को संस्पर्श करेगी ? अतः मुझ पर कुछ ही देर सही, आसीन होओ न ? मयूर की प्रार्थना की इति हुई ही नहीं कि समग्र वन-वासन्ती जो उन पिछवाइयों में चित्रित एवं पुष्पांकित थी - गदगदाये कण्ठ से प्रार्थना कर उठी -"हे कोटि-कोटि-रति-अनंग मदहारी प्रिया-प्रियतम, मेरी इन कलाकृतियों में अभिव्यक्त यह अपूर्व अनाविल तरुणाई मात्र तुम्हें सुख देने के लिये ही व्यक्त हुई है ? नाथ ! समग्र प्रकृति में मेरा यह उत्तरोत्तर अभिवर्धित अभिनव सुन्दरतम रूप मात्र तुम्हारे सुख के लिये ही तो है, हे मेरी प्राणेश्वरी वृषभानुजा ! हे मेरे प्रियतम नीलमणि !! देखो ये नगराज, इनकी स्वर्णमयी चमचमाती सुमेरु सदृश शिखरश्रेणीयाँ, ये प्रपात, ये गिरि-परिसरगत-वनोद्यान, ये उपत्यकाएँ, ये गहन, गहनतम कानन, ये गिरिप्रपात, निर्झर, जल से पूर्णतया आप्लावित हद सरोवर, इनके किनारे आसीन सुन्दरतम असंख्य पक्षी समुदाय सभी तो आपको अपनी सुखदान-स्पृहा

से रिझाने परमाकुल प्रतीक्षारत हैं । नाथ ! इन सभी से अपने रूप दर्शन की स्पृहा बुझा लो न ?

अहा ! मानों नर्मदा और प्रेमवती साक्षात् चतुर्मुख वेदगर्भ ब्रह्मा हों, इनकी परछाइयों में पुष्प-अंकित वन ही नहीं व्योमपर्यन्त अणु-अणु विरह वेदना से व्याकुल हुआ चीत्कार कर उठता है- **प्रिया-प्रियतम, प्रिया-प्रियतम, प्रिया, प्रिया, प्रियतम, प्रियतम ।**

आओ ! आओ !! देखो, इस सहस्त्रदल कमल को तो देखो । अहा ! कैसा आह्लादपूर्ण इसका विकास है । इसमें निहित लावण्य,मधुरिमा, सरसता, सुकोमलता, स्निग्धता, कान्ति, सभी अवर्णनीय हैं । अहा ! इसके चतुर्दिक भ्रमर गुंजार कर रहे हैं । परन्तु देखो यह कंपित हो-होकर इन भ्रमरों को अपने ऊपर बैठने ही नहीं दे रहा है । यह स्पष्ट भ्रमरों को चेतावनी दे रहा है - "तुम्हें मेरे मकरन्द-सेवन का तबतक सर्वथा अधिकार नहीं है जबतक प्रिया-प्रियतम आकर मेरे सौन्दर्य को एक बार निरख नहीं लेते । यदि तुम मेरे मकरन्द का अनके आने के पूर्व ही पान कर गये, - फिर तो मेरी विकासगत निर्मल शोभा अवशिष्ट ही नहीं रहेगी । तब मेरे प्राणपति मुझे देखकर कैसे सुखी होंगे ? हाँ वे एक बार मेरे इस सौन्दर्य पर दृष्टि डाल लें फिर भले ही तुम मेरा समग्र मरकन्द पान कर जाना । मुझे फिर नवीन जीवन धारण करने तक इस वृद्ध, जर्जर, निरर्थक वपु को रखने में कोई रस भी तो नहीं रहेगा।" इसी प्रकार वह इन वराटी जलचरों को भी निषेध कर रहा है । कह रहा है-"देखो ! यदि तुम्हें मुझे नाल सहित उच्छेद भी करना हो तो तनिक ठहर जाओ, एक बार मेरे जीवन निधि मुझपर दृष्टिपात कर दें, मात्र एक दृष्टि ही डाल दें, फिर तुम मुझ समूचे को भले ही भक्ष कर जाना, परन्तु जबतक वे हिन्डोला-कक्ष में नहीं आवें, तबतक मुझसे दूर-दूर रहना भला ।"

और इन हरिणियों की ओर देखो । इनके आकर्ण विलम्बी दीर्घ नेत्र तीखी कोरयुक्त दृष्टि से कितनी आकुल प्रतीक्षा कर रहे हैं अपने प्रिया प्रियतम की । इनके मुख का ग्रास ज्यों का त्यों मुख में रखा है । ये उसे निगल ही नहीं पा रहे । और इनके नेत्रों में जो यह अनुपम रसमयता निखर रही है इसका कारण पता है तुम्हें ? अरे भाई, जीवनसर्वस्व प्राणनिधि भरे हैं इन सभी की नेत्र-दृष्टि में । देखा ! इनके नेत्रों की आकुलता कैसी असीम है ?

समग्र वन विकलता के अतिरेक में 'प्रियतम, प्रियतम' नामोच्चारण कर रहा हो, ऐसा सुरम्य वन-संगीत सर्वत्र गूँज रहा है । "हे विश्व-विमोहक जीवनसर्वस्व नीलमणि !, हे त्रिभुवन मनमोहिनी कीर्तिकुमारी !! हम पर बस एक दृष्टि डाल दो, कृतार्थ कर दो हमें ।" और वन में उठती इन आकुल भाव-ऊर्मियों को सुरभित समीर नर्तन करता हुआ ले चलता है, नन्दतनय एवं भानुनन्दिनी के श्रवण-रंध्रों में पहुँचाने ।

समीर किसी को भी बिना बताये परमोदार-स्वभावा किशोरीरानी के कर्णविवरों में इन सभी की आकुल पुकार उँडेल देता है । और रानी के अधर-पल्लवों में अनुमोदनभरी मधुरातिमधुर स्मिति नाच उठती है । समीर रानी की स्वीकृति पाकर आनन्द से परिपूरित हुआ वन में सभी को हर्षभरा संवाद दे देता है :- "हे वनचरों, हे शुक सारिकादि पक्षियों, हमारे राजा-रानी आ रहे हैं । उत्फुल्ल होओ, नृत्य करो, प्रमुदित होओ, गाओ, प्रसन्न होओ ।"

किशोरीरानी के रुख एवं संकेत को पल-पल निहारते रहने वाली और उसी के अनुसार समग्र लीला की संघटनकर्ती तुलसी-कानन की अधिष्ठातृदेवी ने अपनी अभिनव रागिनी के मिस से सर्वत्र सभी लीलापात्रों को यथावश्यक संकेत दान कर दिया कि वनागत नीलपीतद्युति सौन्दर्यसार दंपति को झूला झुलाना है ।

और अब तो भानुनन्दिनी ने नूतन अनुराग समुद्र की लहरियों पर नर्तन करते हुए अपने प्रियतम पर झूला झूलने की समुत्सुकता भी व्यक्त कर दी । और फिर क्या था, सखियाँ प्रतिक्षण वर्द्धमान नव नव उल्लास से पूरित हुई चल पड़ीं, प्रिया-प्रियतम सहित, उसी संकेत स्थान की ओर जहाँ विशाखा कुंज के पिछवाड़े यह शुचि सुन्दरतम हिन्डोला प्रेमवती एवं सखी नर्मदा निर्माण कर चुकीं हैं ।

और, अब तो सखियों सहित प्रिया-प्रियतम भी व्यक्त हो उठे उस पारिजात वृक्ष के पार्श्व में ही । देखो, प्रिया अपने नेत्रों में अतिशय प्यार भरे हुए कभी तो प्रेमवती एवं नर्मदा की ओर निहारती हैं, कभी, अतिसूक्ष्मता से उनकी कृति को। जीवन्त अंकण को देख-देखकर प्रिया का पीत कलेवर प्यार के उदधि की तरह लहराने लगता है । प्रियतम का नील कलेवर भी संविन्मय आनन्द के आवेग से झूम उठता है । क्या ही जीवन्त प्रकृति का चित्रण है, परन्तु सब निर्माण है मात्र पुष्पों का । हिण्डोरे में मयूर के उड़ते दोनों ऊर्ध्व

पंख ही पीठ के वाम और दक्षिण किनारे हैं और उनके मध्य में विशाल मखमल का आसन है जिस पर प्रिया-प्रियतम अतिसुखपूर्वक विराजित हो सकते हैं । आसन के नीचे ही चरण रखने की चौकी है । सभी सुकोमल पुष्पों से आस्तृत हैं, परन्तु है सब पूर्णतया स्थिर एवं मजबूत । इसी प्रकार प्रिया-प्रियतम की पीठ को टिकाने के लिये पिछौरी, ऐसी प्रतीत होती है जैसे मयूर की ऊर्ध्वपिच्छ हो । परन्तु वह पिछौरी भी स्वर्ण-निर्मित रत्न एवं पुष्पों से जटित है । कथन का इतना ही मंतव्य है कि सम्पूर्ण निर्माण है पूर्णतया सुरक्षित, मजबूत किन्तु साथ ही सर्वतोभावेन, सुकोमल और ज्योतिर्मान ।

अहा ! प्रियतम तो मंजुलीला के कंधे पर हाथ रखकर अविलम्ब ही उस हिण्डोले पर आसीन हो गये हैं । परन्तु प्रेमवती और नर्मदा तो अपनी भावसमाधि में ही डूबी हैं । उन्हें कहाँ होश है ? उन्होंने तो प्रिया-प्रियतम के सुख के लिये हिण्डोरा निर्माण कर दिया, अब वे तो अपने भाव में कोई और अभिनव सुख-सृजन की रचना में संलग्न है । वे तो उसी सुखचित्र का ध्यान करतीं उसको प्रत्यक्ष सम्मुख देख रही है । उनके प्राण उसमें ही विजड़ित हो गये हैं ।

रानी ने एक मुसकानभरी दृष्टि उनके भावाविष्ट आनन पर डाली और तब तत्क्षण ही उन्होंने एक अतिशय प्रीति-गरिमा से भरा खेल करने का संकल्प कर लिया । सखियाँ रानी का संकेत समझ गयीं और उन्होंने इन दोनों मालिन कन्याओं- प्रेमवती और नर्मदा को प्रियतम के दक्षिण एवं वाम पार्श्व में झूले पर आसीन कर दिया । रानी तो अपने नेत्रों से सर्वत्र एवं अतिशय प्यार न्यौछावर करती मानो झूले में स्वयं अपने हाथों झौंटा लगादेंगी- ऐसा मनोरथ करतीं झूले की डोर पकड़े तृण संकुल धरा पर अवस्थित हो गयीं ।

'षडऋतु रहत सदा कर जोरे '

छहों ऋतुएँ तो निकुंजदेव एवं निकुंजदेवी की सेवा में उन्हें नवीन-नवीन सुखदान करने के लिये समुपस्थित रहती ही हैं दम्पति को जब भी जिस ऋतु से जितने काल सेवा लेनी हो किंचित् संकेत भर कर देने की आवश्यकता होती है ।

संकेत पाते ही पावस उमड़ पड़ी इस प्रदेश को रसवर्षण से आप्यायित कर देने के लिये । नील-अम्बुदराशि ने व्योम को उमड़-उमड़ कर आच्छादित कर दिया । दिशाओं में परिव्याप्त हो उठी घन-गर्जन की अनवरत

घन-घन ध्वनि । उल्लसित वीर बहूटी अलंकृत करने लगीं धरा के वक्षस्थल को ।

तो आज रसराज को इस प्रेमवती और नर्मदा को अपने स्वरूपगत चिन्मय आनन्द से आपाततः परिपूरित कर देना है । निज रस से लथपथ पूर्णरूपेण सिक्त स्नान करा देना है ।

आज झुलाने वाली हैं - निज सखियों के सहयोग से वृषभानुराजदुहिता और झूल रहे हैं - नील मयंक अपनी दो मालिन कन्या सखियों के साथ ।

अहा ! दोनों सखियों सहित प्रियतम की कैसी शोभा है ? मानो दोनों ओर, दो स्थिर तड़िल्लताओं के मध्य, नीलमेघ पवन वेग से हिलोरें ले रहा हो । प्रियतम के इन्द्रनीलद्युति अंगसंस्थानों पर पीत परिधान, ललितगात्र, इनके दर्शन मात्र से सखियाँ एवं कुंज का अणु-अणु आनन्दोल्लासित हो उठा था ।

निर्धारित क्रम से एक झौंटा ही लगा था कि प्रेमवती और नर्मदा की भावसमाधि टूट गयी । उनकी दृष्टि जैसे ही उन्मीलित हुई, उन दोनों ने ही अपने पार्श्व में पाया मयूरपिच्छगुम्फित मुकुटी को। जो अपने दोनों हाथों से उनको स्कंध देश से पकड़े था। उन्होंने सम्मुख देखा तो पाया कि सर्वत्र ओर-छोरविहीन सुषमा बिखेरती, अपने श्रीअंगों की मधुरिमाभरी आभा से सखियों की समग्र श्री को हतप्रभ करती, वृषभानुदुहिता सम्मुख झौंटा दे रही हैं ।

प्रियतम निरख रहे हैं, सतृष्ण नेत्रों से कभी प्रेमलता को, और कभी नर्मदा को साथ ही कभी सम्मुख झौंटा देती प्रिया को । प्रेमवती अनुभव कर रही थी प्यार की कूलविहीन स्रोतस्विनी उमड़ रही है उन दोनों के प्रति प्रिया और प्रियतम के हृदय में । प्रियतम तो उन दोनों पर अपने स्नेह का अपार वैभव अविरामरूप से न्यौछावर कर रहे हैं । प्रेमवती और नर्मदा दोनों के कमल से दीर्घ नयन उस छलकते प्यार से झर-झर टप-टप अश्रु टपकाने लगे । उन्हें तो जीवन में कभी भी ऐसे सौभाग्य की कल्पना ही नहीं थी कि प्रियतम के साथ वे झूला झूलेंगीं और प्रिया झौंटा देगीं । अनन्त कोटि मदन मदहारी प्रियतम उन महा अधमाओं, नीच मालिनों को इस प्रकार अपनी प्रिया के सम्मुख स्कंध देश से पकड़े अपने से सटाये बैठेंगे और इस प्रकार अतिशय तृष्णातुर उनकी रूपमदिरा का नयनप्यालों में भर-भर कर पान करेंगे ।

उन्हें यह निर्णय करने में एक क्षण भी नहीं लगा कि अति सुकुमार अंग किशोरी प्रिया के कपोलों पर, भाल देश पर, अगणित स्वेद-कणावली उन्मिषित हो गयी है, और मृदुल कनककलेवरा, वे इन दोनों वन पुष्पों की खोज में दौड़ने वाली हृष्ट-पुष्ट काया मालिनों को प्रियतम सहित झौंटा देने का अत्यधिक श्रमभार कैसे सह पावेंगीं ?

बस वे तुरन्त ही हिन्डोरे से कूद पड़ीं । उन दोनों ने अतिप्रेम से फूल जैसी सुकोमल प्रिया को सहज रूप से गोद में उठाया और विराजित कर दिया उस मृदुल सुमनों से सुशोभित झूले के मयूर आसन पर - प्राणवल्लभ नीलसुन्दर के साथ ही ।

देखो ! देखो !! व्योम को आच्छादित किये नील अम्बुदराशि के हृत्तल में विद्युलता कैसी शोभा दे रही है ? सर्व दिशायें इस परिव्याप्त शोभा से उल्लसित हो उठी हैं ।

और परमाश्चर्य, टँगी पिछवाइयों में चित्र रूप में अंकित असंख्य मयूरों के दल उन चित्रों से जीवन्त बाहर आ गये हैं और उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे हैं । सम्पूर्ण वनक्षेत्र को उन्होंने अपनी सुमधुर केकाध्वनि से मुखरित कर दिया है । धरा के वक्षस्थल पर आनन्द के पुलक उठ रहे हैं और वे अतिशय सुख से हरी हो रही हैं ।

नीलसुन्दर ने अपनी प्राणों की रानी को अपनी वाम भुजा में भर लिया है । प्रीति की गरिमा से साँवर प्राणधन के लोचन छल-छल करने लगे हैं । परमोदार प्राणजीवन नन्दतनय अपनी प्राणप्रिया के मुख पर छलके स्वेद कणों को अपने पीताम्बर के छोर से स्वयं परिमार्जन करने लगे हैं ।

देखो ! ललिता ने वीणा लेकर उस पर स्वर भरने प्रारंभ कर दिये हैं । मेघ-मल्हार रागिनी स्वयं मूर्त्त हो उठी है । तुंगविद्या ने आलाप प्रारंभ कर दिया है , और विशाखा ने मृदंग पर अति सुरीली थाप देना प्रारंभ कर दिया है । अब तो गायन, वादन और नृत्य की इच्छा से सखियों के मन गुदगुदा गये ।

अहा ! रूप की किरणों से दिशायें उद्भासित हो रहीं हैं । नूपुरों और कटिकिंकिणियों के रव से रवितनया का कूल मुखरित होने लगा है । वन श्री की श्रवणेन्द्रियाँ उस अमृतमयी झंकार में ही डूबने लगीं । उस महामोहक रव की सत्ता के सम्मुख अन्य ज्ञान रहता भी कैसे ?

ओह ! अब तो ये नन्दतनय वंशी को संस्थापित कर रहे हैं अपने अधरों पर । क्या उसमें स्वर भरेंगे ? फिर तो प्राणोन्मादी वेणुवादन से सम्पूर्ण गिरिपरिसर ही निनादित हो उठेगा । अरे ! उस सर्वमोहक स्वर लहरी में तो सभी डूब जायेंगे, कोई बच ही नहीं पावेगा ?

सभी सखियाँ प्राणवल्लभ और प्रिया के झूले को चतुर्दिक घेरे खड़ी हो गयी हैं । देखो ! देखो !! रूप की किरणों से सर्व दिशायें उद्भासित हो रही हैं । विश्व सत्ता का सम्पूर्ण सौन्दर्य, जैसे उस पारिजात तरु के पत्तों पत्तों पर फूट पड़ा। सम्पूर्ण सुषमा मानो वहाँ स्वयं ही समुपस्थित हो गयी हो। प्राणवल्लभ नन्दतनय वंशी वादन जो करने जा रहे हैं । सम्पूर्ण रसिकता के उद्गमस्थल व्रजेन्द्र तनय अपनी वाम भाग में स्थित प्रिया पर कैसी महारसभरी दृष्टि निक्षिप्त कर रहे हैं । सखियों के नेत्र अपलक विस्फारित हैं । सामने विश्व चमत्कारी सौन्दर्यपूर द्विधा रूप में विभक्त खड़ा है । जिसके कण मात्र के सम्पर्क से आत्माराम योगीन्द्र-मुनीन्द्रगण विमोहित हो जाते हैं वे अपनी ब्रह्मज्ञानगत अखण्ड शान्ति को विस्मृत कर, उन्मादपूर्ण रसमयी परम व्याकुलता से जल-विहीन मत्स्य की तरह तड़पते रहते हैं। उस अनन्त, पारावारविहीन रूपसुधासमुद्र में अवगाहन करती सखियाँ ही नहीं, सभी जलचर-थलचर और चेतन-अचेतन, गिरि, प्रपात, निर्झर, भूखण्ड और सम्पूर्ण सत्ता ही विमुग्ध हुई किसी अनिर्वचनीय आनन्द में डूबी है ।

हिन्डोले पर विराजित झूलाझूलते नील-पीत-द्युति दंपति के सच्चिदानन्द सौन्दर्य-सुधा-सागर रूप को देखकर ललितादि सखियों को रहरह कर आनंद समाधि लग रही है ।

निर्धारित क्रम से झौंटे लग रहे हैं और संविन्मय स्वरूपविलास का समुद्र हिलोरें लेने लगता है । परस्पर रसमय हृदय की रसराशि का आस्वादन करने की उत्कण्ठा नव-नागरी एवं नव-नागर दोनों के प्राणों में जाग्रत है । दोनों के नील-पीत अंगसंस्थानों की मिश्रित द्युति से निकुंज देश सुख में हरा हो रहा है और दोनों के गात्र-सौरभ से अतिशय सौरभान्वित हो उठे हैं । झौंटे की गति तीव्र हो रही है और हिन्डोरे के आन्दोलन से गतिशील हुई समीर के झौंकों से सुमन झर-झर झर रहे हैं । मानो कुसुमावलि आत्मोत्सर्ग कर रही हो - इस द्विधा अप्रतिम रूपराशि पर ।

आनन्दपूर हास-विलासजन्य अद्भुत विह्वलता से प्रियाप्रियतम दोनों एक दूसरे के तन में इस प्रकार लिपटते हैं मानों परस्पर आत्मसात् हो रहे हों ।

प्रीतिरस का उच्छलन कितना एवं कैसा है, कौन बतावे ? इतना ही कहना संभव है कि हत्तल की सीमा में वह अवरुद्ध नहीं हो पा रहा है ।

कृष्णेन आराध्यत इति राधा

नलिनी की कथा

आओ, अब चलें नापितकन्या नलिनी एवं सुगन्धा की सुधि लें । वे भी मंजिष्ठा की परम प्यारी सखियाँ हैं, उनकी निराली सौभाग्य गाथाएँ क्या हैं, अवगाहन तो करें ।

नलिनी, किशोरीरानी के कुन्दनद्युति अंगों में फुलेल मर्दन करती है । वह अपने घर से पारंपरिक रूप से निर्माण किया हुआ औषधियों का सारग्राही संपुट दिया हुआ अंगराग लाती है और रानी के अंगों में उबटन करती है ।

नलिनी को निरे प्रभात ही फुलेल-मर्दन करने वृषभानुभवन आना पड़ता है । रानी ज्यों ही निद्रा त्याग कर शय्या से उठती हैं ललिता नलिनी को पुकार लगाती है । अत: वह एकाकिनी ब्राह्ममुहूर्त होते ही अपने गृह से चल पड़ती है, वह अपने स्नान, श्रृंगारादि सभी कार्य वृषभानुपुर पहुँचकर वहीं सम्पन्न करती है । आज उसे कुछ विलम्ब हो गया है । पिछले दिवस उसे रानी का उबटन निर्माण करना था, पुरातन निर्माण समाप्त-प्राय: था । अत: दिवसपर्यन्त उपयोगी वनौषधियों का संचय करने वह वन में भटकती रही थी । जो औषधियाँ उसे इस उबटन में डालनी होती हैं, वे सभी नारायण गिरि में ही बहुलता से प्राप्त होती हैं, अत: उन्हें ढूँढकर लाने में उसे संपूर्ण दिवस वनों में भटकना पड़ता है । वनौषधियां इकठ्ठी करके उन्हें स्वच्छ कर उसने कूटकर, पीसकर, छानकर उनका चूर्ण बनाया है और तब दधिकी, मक्खन की, मलाई की शताधिक भावना देकर यह विलेप निर्मित हुआ है । उसका सम्पूर्ण दिवस इस उबटन लेप के निर्माण में ही लग गया था ।

संध्या समय वह अपने निवास की छत पर किंचित्काल घूमने आयी थी । वृषभानुबाबा ने उसके परिवार को रहने के लिये अपने उद्यान में ही निवास दे दिया है । वह निवास यथार्थत: तो उनके राजमहल का ही एक भाग है । भ्रमण करते हुए उसने लक्ष किया कि सर्वत्र पद्म गंध को धारण किये मलय पवन अति मन्द-मन्द प्रवहमान हो रहा है । न जाने क्यों छोटी-मोटी लतायें, गुल्म, वृक्ष सभी आज पुलकित हैं और साथ ही अति उल्लास में भी

भरे दृष्टिगोचर हो रहे हैं । उसे प्रतीत हुआ मानो किसी विशेष उत्साह से समग्र वन सुसज्जित हो रहा है । शोभा, जैसे वन के अणु-अणु से प्रस्फुटित हो रही है । उसे किंचित् आश्चर्य तो हुआ किंतु मन ही मन उसने समाधान कर लिया कि अवश्य ही रानी कुछ काल पूर्व इस उद्यान में भ्रमणार्थ आयी होंगीं । तभी समग्र वन उल्लसित एवं पुलकित-प्रफुल्लित है ।

कोकिला, शुकादि पक्षियों की मधुर ध्वनि सर्वत्र गुंजित है। आम्रवृक्ष बौरों से लदे हैं। सहसा उसकी दृष्टि में एक आश्चर्य प्रकट हुआ, उसने लक्ष्य किया कि नवीन पल्लवों और पुष्पों से अलंकृत सामने ही स्थित उस कुंजकुटीर के पीछे अमृतमयी उज्ज्वल, स्निग्ध एवं शीतल किरणें लहरा रही हैं। आज पूर्णिमा तो थी नहीं, जो चन्द्रोदय होता, फिर ये अनुपम किरणें तो भूमि स्थल पर ही हैं, व्योम से तो इनका संबंध ही नहीं है। अब उसे यह भी समझ में आया कि इसी ज्योतिपुंज के ही कारण आज सर्वत्र विशुद्ध सन्मय उल्लास हो रहा है। वह आश्चर्यचकित थी कि यह श्याम प्रभा तो सब अगजग को भुलानेवाली विलक्षण प्रेममयी है। अब तो उसका समग्र मन नेत्रों में ही एकाग्र हो गया । वह एक दीवार की ओट में हुई उधर ही दृष्टि स्थिर करके छुपकर बैठ गयी। अहा ! उस निर्मल प्रभा से शनैः शनैः अगणित शारदीय चन्द्रमाओं का मन हरण करने वाला मुखचन्द्र व्यक्त होने लगा। अरे ! अरे!! इस गोल मुखचन्द्र में तो पूर्ण चन्द्र व्यक्त होने जा रहा है। इसके मनोहर अतिशय विलासमद से बोझिल झुके-झुके दो विशाल नेत्र भी हैं। उसका आश्चर्य और बढ़ गया। वे नेत्र आकर्षण की खान थे; महान रस से भरपूर थे। और अब तो उस ज्योतिसुधा निधि से सौन्दर्य की परम मनोहारी तरंगें उठने लगीं। और वे तरंगें ही ललनाओं के चित्त को चुराने में अति शूरवीर समग्र अंगों के रूप में प्रकट होने लगीं।

नलिनी परम मुग्ध थी। कुछ बोल नहीं पा रही थी। उसकी सब अंगों की गति सहज ही रुक गयी। उसके हृदय में अपरिमित, अथाह, दिव्य प्रेमामृत समुद्र उमड़ उठा। वह देखती जा रही थी- शनैः शनैः उस सच्चिन्मयी नील-ज्योति से मयूरपिच्छगुम्फित मुकुटधारी सुन्दर सुख का कन्द मस्तक प्रकट हुआ, घुँघराली अलकावलि भी व्यक्त हो गयी। और तब प्रकट हुआ- वह परम प्रसन्न वदन-सरोज जो अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्य से भरा छलकता सरोवर ही था।

उस नवीन जलद के समान घनश्यामकान्ति-वपु के ऊपर पीताम्बर लिपटा था। हृदयदेश में मालती और कमल पुष्पों की माला थी, जिनपर रसलोभी भ्रमर मँडरा रहे थे। समस्त अंग चन्दन से अनुलिप्त थे। काले घने केश थे। वह अपने मस्तक पर स्वर्ण खचित पाग पहने थे। मन्द-मन्द मृदु मुस्कान की छटा सर्वत्र बिखर रही थी। उसके एक हाथ में क्रीड़ा-कमल था, कटिफेंट में मुरली खौंसी हुई थी । नलिनी उस रूपोदधि को देखकर आनन्द में डूब गयी । नलिनी को यह भी ज्ञान नहीं रहा कि वह स्वयं कौन है, कहाँ जा रही है, क्यों जा रही है। उस करोड़ों-करोड़ों कामदेवों को लज्जित करने वाले रूप ने उसके मन को बलात् आकर्षित कर लिया । वह धीर- धीरे अति मन्द-मन्द पैर रखती निश्शब्द छत से नीचे आँगन में उतरी । उस निवास से बाहर आयी और आर्त्त विह्वल हुई उस ज्योति की ओर दौड़ पड़ी । वह ज्योति ज्यों की त्यों उस कुंज के सहारे खड़ी मधुर, मधुर मुसका रही थी । यदा-कदा उसके चरण नूपुर बहुत ही मधुर ध्वनि कर उठते थे । दोनों ने एक दूसरे को देखा । और तब नलिनी प्रेम-सुख-रस के समुद्र में डूब गयी । वह बेसुध हो गयी थी । उस समय उसमें अन्य कुछ भी अवशेष नहीं रहा था ; मात्र लीला-आस्वादन की वह यंत्र बन गयी थी । बाह्यज्ञान का सर्वथा अभाव होने से, लज्जा, भय, एवं मान कुछ भी व्यवधान उसके एवं उसके प्रियतम के मध्य नहीं रहा था । प्रेमसुधा में मत्त वह सहज सब कुछ त्याग, दौड़ पड़ी थी अपने प्रेमास्पद के पास ।

सारा जगत् ही उसके मन से हट गया था, और सभी विषय-सुख-समूहों की उसे विस्मृति हो गयी थी । उसके सारे अंग निश्चेष्ट थे, वाणी रुद्ध थी । उसे तो यही अनुभव हो रहा था कि मधुर, सुमधुर, उस मधुर से भी परम मधुर तथा उससे भी और मधुरतर-मधुरतम एक नीलज्योति उसके चतुर्दिक उसे अपने आलिंगन में बाँधे है । उस नीलज्योति के अंगों में नित्य, निरन्तर माधुर्य अभिवर्द्धित होता जा रहा है । और उस मधुरार्णव की लहरें उसे भी आत्मसात् कर उसके समस्त अंगों में माधुर्य उँडेल रहीं हैं । वह समस्त सौन्दर्य और माधुर्य का मूल-आधार, बीज, मूलस्रोत, नीलकमलरूप सुन्दर कलेवर अपार मधुर सुगन्ध से भी भरा है । उसी में दो नेत्र-कमल, एक मुख-कमल, एक नाभि-कमल, दो कर-कमल, दो चरण-कमल हैं जो तेज एवं शोभा के भण्डार हैं, जिनके पृथक्-पृथक् वर्ण हैं, एवं उन सभी में से भिन्न-भिन्न मधुर सुगन्ध भी प्रवाहित हो रही है । एक ज्योतिर्मान नीलकमल

में आठों विभिन्न वर्णों के कमल और नीलकमल की अपनी गन्ध के साथ इन आठों कमलों की विभिन्न विचित्र सुगन्ध, सबके संयोग से वह परम सुन्दर श्रेष्ठ अनुपम विलक्षण शोभा, जो उसके सम्मुख थी, वह उसमें उमड उमडकर समा रही थी । उसके अंग-अंग मे वह शोभापूर भर रहा था । नलिनी छक गयी । न जाने कितने काल तक वह इस दशा में पड़ी रही। जब ब्राह्म मुहुर्त हो गया, प्राची दिशा में अरुणाई फूट पड़ी तब ही उसे बाह्यज्ञान हुआ, तब तक वहाँ अन्य कोई नहीं था । उसने इधर-उधर चतुर्दिक देखा । उद्यान पूर्ववत् था । वह कुंज के चतुर्दिक घूम आयी । कहीं उस नील चिज्ज्योति की उपस्थिति का कोई चिन्ह भी शेष नहीं मिला । वह विचार करने लगी - "वह कोटि-कोटि मनोजमनोहर, परम विलक्षण नीलश्याम कलेवर कौन था ? क्या वे ही किशोरीरानी के प्राणहरण नीलमणि हैं ? वे ही नन्दतनय क्या इस उद्यान में आये थे ? हाय, हाय ! कहाँ वह सुधामय सौन्दर्य, दिव्य रूप गुण की अनन्त निधि और कहाँ मैं अत्यंत कुत्सित मन और तन को धारण करने वाली कुरूपवती नापित कुमारी ? कहाँ वह प्रेम-सुधापूर आनन और कहाँ स्थान-स्थान पर शीतला के दाग के समान कुरूपता के चिन्हों से भरा मेरा कलूटा मुख ? हाय ! यह क्या कर बैठी मैं ? यों सोचते-सोचते नलिनी के सम्मुख उसके सारे दोष भयानक रूप में मूर्तिमान होकर प्रकट हो गये । वह उनको देख-देख कर काँपने लगी । वह डर गयी । अब रानी को अपना यह मुख मैं कैसे दिखाऊँगी ? इतनी भयानक दोषी एवं घोर पापिनी मैं प्रियतम नीलमणि के अंगों से लिपटने का साहस ही कैसे कर बैठी ? जिसके मन एवं शरीर की मलिनता का पार ही नहीं है, वह महानिर्लज्ज कदाचरण करने वाली अब किस मुख से रानी की चरणरज का जीवनव्यापी आश्रय चाहेगी ? वह, बुद्धि से तो यह सब विचार कर रही थी परन्तु उसका भीतरी मन अब भी उस रूप, शील, सौन्दर्य और सद्गुणों के समुद्र में डूब जाने को आतुर हो रहा था । वह, इस निर्लज्ज दशा का महावीभत्स चित्र रानी के सम्मुख रखने को व्याकुल हो उठी । उस महा-अधमा की निर्लज्जता की सीमा ही नहीं है । अहा ! कितने अनुपमेय और अतुलनीय गुणों के आगार कहाँ तो नीलसुन्दर, उसकी स्वामिनी के प्राणनाथ, और कहाँ महाघृणित दोषों से भरी वह कामुकी पामरी। उसके मन की प्रियतम से मिलने की इच्छा तो ऐसी ही थी जैसे घोर अन्धकार की प्रकाशमय सूर्य से मिलने की इच्छा हो जाय । उसके हृदय में अत्यन्त असह्य पीड़ा जाग उठी । वह लड़खड़ाते पैरों से किसी प्रकार रानी के

पास पहुँची तो सही, परन्तु पहुँचते-पहुँचते उसकी सम्पूर्ण बाह्य-चेतना लुप्त हो गयी, वह सारी सुध-बुध खोकर उनके चरणों में गिर पड़ी ।

किशोरीरानी ने उसे अपने अंगों में सटा कर अपने अंचल से उसका मुख मार्जन किया । पीयूषपूरित कण्ठ से वे बार-बार उसे "नलिनी ! नलिनी ! बहन क्या हो गया री तुझे, " कहकर जाग्रत करने की चेष्टा करने लगीं । किशोरी अतिशय प्यार से उसके मुख का चुम्बन किये जा रही थीं और उससे प्रश्न पर प्रश्न कर रही थीं :- "अरी बहिन री ! तू तो नित्य आनन्द में डूबी रहती थी, अद्‌भुत मधुर हास्य सदा ही तेरे मुखसरोज पर रह-रहकर नाचता ही रहता था । तेरे सम्पूर्ण अंगसंस्थान निरन्तर मानो सुख की ऊर्मियों पर ही संतरण करते रहते थे । हाय रे ! आज तुझे यह क्या हो गया री ? वही तेरा गात्र आज अचानक कृश क्यों हो गया री ? एक ही दिन में ऐसा परिवर्तन किस हेतु से री ? अरे ! अरे !! तू आकुल हुई रो रही है ? तेरे प्राणों में तो आजतक मैंने कभी यह व्याकुलता नहीं देखी ? तू मुझे इस सबका कारण सत्य, सत्य बतला दे री !"

इस प्रकार अनवरत प्रश्न करने पर भी जब नलिनी की मूर्च्छा नहीं भंग हुई तो रानी को सहसा भान हो गया कि अवश्य ही इस आकस्मिक परिवर्तन का हेतु उसके प्राणनाथ नीलसुन्दर ही हैं । उन्होंने ही इस पर कुछ अपनी कारस्तानी की है । निश्चय ही नलिनी के मर्मस्थल में उनकी ही बंकिम चितवन समा गयी है । रानी ने ललिता को पुकार कर नलिनी के उपचार की व्यवस्था करायी । कुछ क्षणों में ही ललितारानी के उपचार से नलिनी अर्द्धचेतन हुई - परन्तु यह क्या ? नलिनी पुनः रानी के चरणों में गिर गयी । ललिता एवं मंजुलीला आदि सखियाँ उस पर व्यजन कर रही थीं, फिर भी वह सिसकियाँ लेती रुदन करती ही जा रही थी - "अरी ! बहिन, कैसे हटा दूँ री, तू ही बता ? मेरा तो मन उस मोहन की मोहिनी छवि पर जाकर अटक गया है । हाय री ! बहिन, न तो मुझमें उनकी सेवा करने की शक्ति है, न सेवा की योग्यता ही, न सेवा के योग्य कोई पदार्थ ही है मेरे पास; मैं तो मात्र तेरी अकिंचन चरण-रज-दासी हूँ री ! मुझ में उनकी सेवा का भाव भी नहीं है, न ही तनिक-सा भी त्याग है । मेरा तो समस्त जीवन ही नीच स्वार्थ से पूर्ण, धिक्कार के योग्य है । तभी न बहिन ! यह अनुमान हो जाने पर भी कि वे तेरे प्राणपति हैं, मैं उनके अंग में समागयी । आज जब उनके मिलन का मुझे अभाव है,- मेरा मन चिरकाल से चित्त में अंकित-

उस श्यामचंद्र के दर्शन के लिये परम विकल है । देख न, बहिन ! मेरी हृदय-यंत्रणा असीम रूप में बढती ही जा रही है । मेरे हृदय-रस-समुद्र में भयंकर अग्नि जल उठी है । हृदय में प्रचण्ड पीड़ा उठ खड़ी हुई है । एक-एक पल युगों के समान हो गया री ! तनिक भी धैर्य और विवेक नहीं रहा । देख, बहिन ! मैं कैसी निर्लज्जतापूर्वक तेरे ही सम्मुख उनसे मिलन की अपनी टेक व्यक्त कर रही हूँ। कहाँ है मुझमें तत्सुखिया भाव ! क्या मैं अतिशय कुरूपा, सर्वतोभावेन मलिन हृदया, अधम जाति-कुल की नाइन उनका सुख विधान कर सकूँगी ? कदापि नहीं । फिर मात्र मत्सुख की पापाग्नि ही तो मुझे भीषण रूप में जला रही है ?"

"परन्तु मेरी बहना ! उस रूपराशि को - जो सौन्दर्य का अतल समुद्र है, जिसमें अनन्त अतुलनीय प्रीति-गुणों की तरंगें उठती हैं, जिसके एक-एक कण पर अपरिमित कामदेव न्यौछावर हैं, भला कौन ऐसी नारी संभव है जो उन अंगों की मोहिनी को देखकर अपना मन संवरित रख सके ? बहिन ! मेरे लिये तो लाख चेष्टा करने पर भी, अपने को बुद्धि से अनेक बार धिक्कारने पर भी धैर्य धारण करना असंभव हो गया री ! मैंने जितने भी बाँध लगाये, सब टूट गये; मेरे मन ने बुद्धि को दुत्कार कर पूर्ण मिलन की मनोहर इच्छा करली। बहन ! अब तू चाहे मुझे घोर नरकयंत्रणा का दण्ड भले ही दे, मेरी जो दशा है वह निष्कपट मैंने तेरे सम्मुख रख दी।"

सारा सखी-समाज इकठ्ठा हो गया है । नलिनी कभी कातर होकर करुणापूर्ण क्रन्दन करती रानी के चरणों में अपना मस्तक रगड़ने लगती है, कभी अपलक नेत्रों से उन्मादिनी की तरह आकाश की ओर देखती -"हा प्रियतम ! हा, हा नन्द किशोर !" पुकारने लगती है । कभी वह ध्यानस्थ होकर बैठ जाती हैं । तब उसकी दोनों आँखें बन्द हो जाती है । उसे समस्त योगिक समाधियों से विलक्षण प्रेमसमाधि लग जाती है । उसके सारे अंग स्पन्दनरहित हो जाते हैं । सारी सखियाँ उसकी विलक्षण प्रेम दशा से चमत्कृत हो रही हैं । वह पुनः कहने लगती हैं - "इसीलिये बहिन, मैं सदा ही उनसे छुपी ही रही । तेरे ही द्वारा प्रदान किये गये निवास से तुझे उबटन लगाने महल में आना और भानुमहल से पुनः अपने निवास पर चले जाने के अतिरिक्त मैं कभी वनोद्यानों में भी नहीं गयी । मैं सदा ही ध्यान रखती थी कि उनके सम्मुख कभी भी नहीं आऊँ ? परन्तु, मेरे समस्त संगुप्त रहने के

प्रयास के उपरांत भी बहिन ! वे मेरे निवास के पार्श्व के उपवन में पिछली रात्रि चले आये री !"

"बहिन ! मैं तुम्हारी यह पवित्र, अनुपम, अनूठी, अभिमानरहित, आत्यंतिक उदार और अपनी नीच परिस्थिति को देखकर लज्जा के मारे गड़ जाती हूँ । परन्तु बहिन, मैं अवश थी । उनका मुखचंद्र निरखकर मेरा यह जन्म, मेरा जीवन सार्थक हो गया री ! मैं धन्य हो गयी । मेरे दोनों नेत्र सफल हो गये । मेरे पंचप्राण प्रेमरस से आर्द्र हो गये री ! उन्होंने अपनी अहैतुकी पीयूषवर्षिणी दृष्टि डालकर, मेरे अन्तस् में शीतल, सुखद, असीम सुधासागर भर दिया । उनके साथ चाहे मैं मात्र दस क्षण ही रही, परन्तु उनके सान्निध्य में, मैं शिवबीजा, शिवस्वरूपा, सुमतिमयी बनी रही । परन्तु उनके बिछुड़ते ही मुझ में पश्चात्ताप की भयंकर अग्नि जल उठी । उनके बिदा होते ही मेरी पवित्रता, सुषमा, सुन्दरता सभी जाती रही । अब तो बहिन, तेरे चरणों में यह शरीर शव की तरह पड़ा है । मैं अत्यन्त दीन, दारुण दुखमयी, व्याकुल और अधीर हुई तेरी चरण रज की शरण हूँ। बहिन ! जो चाहे सो दण्ड दे, मैं तेरी घोर अपराधिनी हूँ । हे परम उदार बहिन ! अब तू जैसे चाहे, वैसे अपनी प्रीति की टेक निर्वाह कर ।"

नलिनी की प्रेम तथा दैन्य से भरी वार्त्ता सुनकर रानी के दोनों नेत्र छलछला आये । सखियों की भी सिसकियाँ बँध गयीं । रानी ने नलिनी को अपने प्रेम आलिंगन में बाँध लिया । वे प्रेमाश्रुओं से उसे भिगोती जा रहीं थीं एवं कह रही थीं -- "बहिन ! नलिनी री ! तुम एवं सभी सखियाँ मुझ से पूर्णतया अभिन्न हो री ! यह तुम्हारा मात्र शील ही है कि तुम सभी ने मुझ-तुम्हारी एक तुच्छ सेविका को स्वामिनीपद दे दिया है । परन्तु मैं सत्य, सत्य कहती हूँ कि मैं रूप में, गुणों में, प्रीति में, कला-कौशल में, सेवा में तुम सभी के सम्मुख निज को सदा परम तुच्छ ही अनुभव करती रहती हूँ।"

"तुम सब से रहित हो जाने की स्थिति में तो मेरी कोई सत्ता ही कहीं नहीं रहती है री ! तुम सब मेरी अक्षय प्रीति और सौन्दर्य की कोश हो, जिनसे मैं अपने प्राणप्रियतम नीलसुन्दर की एक कणमात्र रसलालसा परितृप्त कर पाती हूँ। बहिन ! मैं तो तुम्हारे बिना कोई वस्तु ही नहीं हूँ ।"

"बहिन ! मैं सत्य, सत्य, सर्वथा सत्य कह रही हूँ कि तू अपना यह सभी दैन्य एवं विषाद मेरे प्रेमाश्रुओं में बहा दे । तू तो मेरा द्वितीय रसमय रूप है । तुझमें मुझमें कोई द्वैत-भेद है ही नहीं । बहिन ! तू राधा की प्राणों की

प्रतिमा है । और वे मेरे प्राणनिवास हैं । अतः वे तुझसे तुझमें मुझको ही देखकर मिल पाये होंगे री ! बहिन ! तू मेरे आलिंगन में गुँथी है, मेरे चरणों में लिपटी है, उसी प्रकार रात्रि में तेरे पास उनके रूप में भी मैं ही आयी थी री ! राधा और प्रियतम दो पृथक् सत्ताएँ सर्वथा, सर्वांश में नहीं हैं । नयी नयी लीलाओं के निर्दोष रसास्वादन के क्षेत्र में नित्य भिन्न प्रतीत होते हुए भी बहिन ! यही परम एवं चरम सत्य है कि हम दोनों नित्य अभिन्न हैं । "

"बहिन री ! तू पूर्ण प्रसन्न हो जा । बहिन, मुझे शीघ्र नन्दभवन जाना है । कुन्दलता आने ही वाली होगी और देख, यह सुगन्धा भी केश रचना करने आ गयी । अभी तो मैंने स्नान ही नहीं किया री ! तू शीघ्र उबटन और तैलमर्दन कर दे । बस, मैं स्नान कर लूँ ।" यह कहते-कहते रानी ने न जाने क्या किया कि एक अभूतपूर्व ही घटित हो गया । अहा ! नलिनी की दृष्टि ही बदल गयी । उसे रानी के एक-एक अंगों एवं अवयवों में सुन्दर श्रृंगार से सजे प्रियतम दिखने लगे । वह मन से अतीत, बुद्धि से अगोचर प्रियतमतत्व को रानी के रोम-रोम में निहित प्रत्यक्ष देखने लगी । उसके हाथ ही मात्र तैलमर्दन एवं उबटन की क्रिया सम्पादित कर रहे थे । परन्तु मन तो विलक्षण भावदशा में न जाने कहाँ विचरण कर रहा था । हाथ, उसके अपने पूर्व स्वभाव से ही वशीकृत से उबटन कार्य करते जा रहे थे । प्रियतम के दिव्य रससाररूप के दर्शन जो आज उसे प्रिया के रोम-रोम एवं अंग-अंग में भरे -- हो रहे थे वैसे तो कल उसे निशा में भी नहीं हुए थे । तीनों कालों में एवं तीनों लोकों में भी ऐसी सम्पदा -- जो उसे आज अपनी रानी के अंगसंवाहन के पारितोषक के रूप में प्राप्त हो रही थी, किसी को कभी न तो मिली थी, न मिली है, एवं नहीं मिल पावेगी ? नलिनी पूर्णतया परितृप्त हो गयी थी । उसके सम्मुख यह तत्व भी ठीक-ठीक प्रकट हो चुका था कि रानी एवं प्रियतम भिन्न दो पृथक् सत्तायें न थे, न हैं, एवं न ही किसी भी काल एवं अवस्था में होने ही संभव हैं । रानी ही प्रियतम हैं एवं प्रियतम ही रानी हैं ।

(पू० गुरूदेव ने यह लीला सुनाते हुए यह रहस्य भी मेरे सम्मुख खोल दिया था कि इस दिव्य लीला का प्रकाश एवं अनुभूति उनके चित्त में भक्तराज रामराय प्रभु के -**"पाछली रात परछाहीं द्रुमपातन की लालजी डोलत रँग भीने द्रुम-द्रुम तरन"** पद को श्रवण करते-करते हुई थी । यह पद श्री वल्लभलालजी गोस्वामी - लेखक के पूर्वाश्रम के पिता उन्हें सुनाया करते थे ।

पू० गुरुदेव, उनसे - जब भी वे पू० गुरुदेव के निकट होते - बारह-बारह घंटे पदगायन सुना करते थे । हजारों ही पद उन्होंने पू० गुरुदेव को सुनाये थे और पू० गुरुदेव अपने लीलाराज्य में उन पदों में बीज रूप में निहित लीलाओं का दिव्य दर्शन करते, विलक्षण अप्राकृत चिन्मय जगत् में विचरण करते रहते थे । यहाँ आगे यह पद भी पूरा दिया जा रहा है ।)

भक्तराज रामराय प्रभु का उपरोक्त पद-

पाछली रात परछाहीं द्रुम पातन की,
लालजू डोलत रँग भीने द्रुम-द्रुम तरन !! १ !!
बने देखत बने, लगत अद्भुत मने,
ज्योति की स्रोत में निकस रही सब धरन !! २ !!
कृष्ण के दरस कौं, अंग के परस कौं
महाआरति मान चली मज्जन करन !! ३ !!
नूपुर धुनि सुनत चकृत है थकि रही,
परि गयौ दृष्टि गोपाल श्यामल बरन !! ४ !!
जरग सी पाग पर मोर चन्द्रिका बनी,
कमल-दल-नयन भ्रुव-बंक छबि मन हरन !! ५ !!
धाई सब गहन कौं, रसवचन कहन कौं,
भामिनी बनी अति छबि सुधारत चरन !! ६ !!
रोम-रोम रमि रह्यौ मेरो मन बस भयौ
नाहिं बिसरत बाकी झुकन में भुज भरन !! ७ !!
कहै भगवान हित रामराय प्रभुसौं मिलि,
लोकलाज भाज गयी प्रान परबस परन !! ८ !!

पद का अर्थ

अरी सखी ! तुझे पिछली रात की, विगत निशा की बात बताती हूँ - वे लालजू श्रीकृष्ण अत्यन्त रंगभीने मेरे पिछवाड़े द्रुमों, द्रुमों के नीचे उनके पत्तों की परछाँही में डोल रहे थे । अहा ! मैंने उन्हें छुपकर देखा था। वे देखते ही बनते थे। उनकी छबि का वर्णन शब्दों से असंभव ही है। मेरे मन को उनका सौन्दर्य परम अद्भुत लग रहा था । एक विलक्षण सच्चिन्मयी

नीलज्योत्स्ना का कोई उद्गम स्थल हो, झरना हो, इस प्रकार उस नीली ज्योति के स्रोत में ही उनके अंग-अंग प्रकट हो रहे थे । मैं उन परम प्रियतम श्रीकृष्ण के अच्छी प्रकार से दर्शन करने को, उनके परम पावनतम अंगों का संस्पर्श प्राप्त करने को - जैसे कोई देवमंदिर में भगवद्विग्रह की महा आरती में जा रही हो, इस पवित्र भाव से चल पड़ी । मैं उन्हें उस वनोद्यान में खोजने लगी । सहसा उनके नूपुरों की ध्वनि ने उनका पता मुझे बतला दिया। मैं उनके नूपुरों की ध्वनि सुनते ही चकित हो उठी और उनका अथाह सुन्दर रूप देखती-देखती थक गयी, उनके रूप सौन्दर्य का कहीं न अथ था नहीं इति थी । वह घनश्याम-श्यामलवर्ण किशोर मेरी दृष्टि के सम्मुख था । अहा ! कैसा विलक्षण रूप था उसका - सिर पर स्वर्णखचित जरी की पाग थी, उस पर मयूर की चन्द्रिका वह लगाये था, कमलदलों के समान उसके विशाल नेत्र थे, भौंहें टेढ़ी बाँकी थीं और उसकी शोभा मन को वशीकृत कर लेती थी। मैं उस शोभा-वैभव को समग्ररूप में ग्रहण कर लेने को उतावली हो उठी और दौड़ पड़ी, उससे रसालाप करने को भी मन उतावला हो रहा था । मैं युवती, अपने चरणों की गति की सुन्दरता को सुधारती हुई चल रही थी । सखिरी ! मैं क्या कहूँ, मेरा रोम-रोम उस सुकुमार सौन्दर्य में रम गया री, और मन उसने हर लिया, अब वह उसके ही वशीभूत हो गया री। ज्योंही मैं उसके पास पहुँची, उसने मुझे झुककर अपनी भुजाओं में भर लिया । उसकी भुजाओं में भरने की भंगिमा मैं भूल ही नहीं पा रही हूँ । श्रीभगवानहित रामराय प्रभु कहते हैं कि मेरी सब लोक-लज्जा भाग गयी, मेरे सब अंग मनमोहन किशोर के परवश हो गये और मैं उससे सदा-सदा के लिये जा मिली ।

सुगन्धा की कथा

रानी की अत्यन्त कमनीय चित्तहारी केशराशि की सज्जा सुगन्धा प्रतिदिन करती है । सर्वप्रथम वह उस केशराशि को वेणी-बंधन से मुक्त कर, उनकी कुन्दनद्युति पीठ पर लहरा देती है । इस केशराशि से घिरा रानी का मुख खिले अरविन्द के सदृश शोभा पाने लगता है । मानो उमड़ती घटाओं के मध्य पूर्ण द्युतिमान शारदीय राकाचन्द्र समुदित हो उठा हो । केशराशि से सौरभ के आवर्त-पर-आवर्त हिल्लोलित हो उठते हैं। वातावरण का अणु-अणु विलक्षण अप्राकृत महक से भर जाता है । कैसी सौभाग्यवती है सुगन्धा कि

उसे इस प्रफुल्लित मुख सरसिज का दर्शन करने का सौभाग्य प्रतिदिवस प्रातः प्राप्त होता है । इस विलक्षण सौन्दर्य-माधुर्य से छलकते पद्म के मधु से नित्य परितृप्त इस नाइन के लोचनचंचरीक अति विशाल आकर्ण-विलम्बी आकृति धारण कर लेते हैं और अपने सौभाग्य का वर्णन छिन-छिन कानों की तरफ जा-जाकर उन्हें सुनाते रहते हैं । कैसा विलक्षण है राधा-मुख दर्शन का यह अमित आनन्दवैभव कि इस अक्षय कोष को प्रतिदिवस भरपूर प्राप्त करके भी नापित कन्या सुगन्धा मद एवं गर्व से युक्त नहीं होती, अपितु इस आनन्दवैभव से बोझिल हुए उसके नेत्र सदा विनीत, निम्न एवं दूसरों के चरणों में झुके ही रहते हैं ।

नलिनी की तरह दिवस में तो उसे भी नारायण गिरि की घाटियों में भटकना पड़ता है, क्योंकि जहाँ नलिनी, रानी के उबटन के लिये औषधियों की खोज करती है, वहाँ सुगन्धा को रानी का तैल निर्माण करने के लिये औषधियाँ एकत्रित करनी पड़ती हैं । वहीं नारायण गिरि पर्वत पर सूखी औषधियाँ बीनते-बीनते दोनों परस्पर सख्यचर्चा में संलग्न हो जाती हैं । दोनों की चर्चा का विषय तो एक ही है, या तो नलिनी रानी के अंगों की मादकता, सुकुमारता और सुघड़ता का वर्णन करने लगे अथवा सुगन्धा उनकी केशराशि की शोभा का वर्णन करे ।

सुगन्धा की सबसे निराली दृष्टि है, उसे तो रानी के केशों में प्रियतम श्यामसुन्दर भरे दृष्टिगोचर होते हैं । यह रहस्य वह भला किसे और कैसे बताये कि रानी की कांचनवर्णी पीठ पर छितरे केश सुगन्धा की दृष्टि में बाल नहीं- श्याम कज्जलवर्ण, नवकिशोर, नीलम प्रियतम हैं- जो उस पृष्ठदेश के सौन्दर्य से विमुग्ध उससे लिपटे हैं । अहा ! उनका प्रीतिदर्शन पाकर परमानन्द सिन्धु उछल उठता है- सुगन्धा के हृदेश में । सुगन्धा नलिनी से मादक मुसकान से युक्त हुई लजायी-लजायी अपनी अनुभूति बताती है- "बहिन नलिनी ! मेरी रानी के प्राणधन कैसे हैं, यह तुझे किस भाँति बताऊँ, री । यह तो अनुभूति का ही विषय है, मात्र स्वसंवेद्य है- सब कुछ । अरी तूने तो मात्र एक रात्रि ही उन्हें अपने निवास के पिछवाड़े देखा, बस, दीवानी हो गयी और मैं तो प्रतिदिन ही उन्हें देखती हूँ । खूब देखती हूँ । मेरे प्रियतम तो रानी की केशराशि हैं .... और वह पागल की तरह हँसने लगती हैं । अरी सखी ! मेरे प्रियतम अभिनव सुन्दर प्रतीत होते हैं री ! उनके सौन्दर्य की मधुरिमा नव-नव लीलाविलास की अप्रतिम सुन्दर भंगिमाओं से सदा विभूषित

होती रहती है। उनकी गुणगरिमा नित्य परिवर्द्धित होती ही रहती है । दो तीन निमेष का कालमान व्यतीत होते न होते- नवीन उमंग की लहरें आत्मसात् कर लेती हैं- पूर्व तरंगों को ।

"अरी नलिनी ! षट्पदश्रेणी को बहुत ही गर्व था अपनी सुन्दरता का, परन्तु मेरी स्वामिनी के मस्तक पर सदा विराजित मेरे प्रियतम की शोभा ने, मेरी रानी के अलकजाल की शोभा ने उनका गर्व चूर्ण-विचूर्ण कर दिया; लज्जा के घने आवरण में अलिकुल ने अपना मुख छुपा लिया ।"

"अरी नलिनी ! सच बताना, मेरे प्रियतम (रानी की केशराशि) के जैसे सुन्दर अंगसंस्थान हैं, वैसे क्या तेरे नीलमणि के अंग हैं ? तू तो उनके अंग अंग से लिपटी हैं न, और मेरी तो मात्र अंगुलियाँ ही उनसे लिपट पाती हैं ? हाँ ! कभी-कभी बयार छेडखानी कर, मेरे प्रियतम को मेरे कपोलों पर उड़ाकर ले आती है । अरी, मेरा तो विश्वास है, मेरे प्रियतम जैसे मृदुल तेरे प्रियतम हो ही नहीं सकते । अरी मेरी अंगुलियाँ जब उनसे उलझती हैं, उस समय मुझे तो वह मृदुलता भी प्रतिक्षण नित्य नव-नूतन बढती ही प्रतीत होती है और मेरे प्राणों को अपार आकर्षित करती चली जाती है।"

"ओह ! जब मेरे (प्रियतम रानी की केशराशि) लोक एवं वेद की मर्यादा छिन्न-भिन्न कर बंधन मुक्त हुए (वेणी-बंध मुक्त हुए) मेरी अंगुलियों को अपने सुकोमलतम हाथों में गूँथकर लहराते हैं, सौरभ से दसों दिशायें सुरभित हो उठती हैं । अरी, इस गिरि परिसर में, इस समूचे वृन्दावन में जो सुवास तेरी घ्राणेन्द्रिय सूँघ रही हैं, वह सब मेरे प्रियतम के श्रीअंगों का ही सुवास तो है- जो सर्वत्र मादकता भर रहा है । अरी नलिनी ! तू तो यही अनुभव करती है कि यह गुलाब की सुगंध है, यह मोगरा की और यह बेले की । कदाचित् किसी अचिन्त्य कृपा के प्रकाश से तेरी घ्राणेन्द्रियों में यह शक्ति आ जाय, तभी तू समझ सकेगी कि सर्वत्र विश्व में कहीं भी कुछ भी सुखद, सुन्दर, सुमधुर गंध है, वह सब मात्र मेरे प्रियतम (रानी की केशराशि) से ही उद्भूत हो रही है ।"

"और देखरी, मेरे प्रियतम (रानी की केशराशि) जब झूमते चलते हैं तो उनकी कमनीयता में मादक अभिनव आकर्षण होता है । पलक पड़ते-न-पड़ते उनके सुधामय अंगों से अप्रतिम शोभा की वेगवती सरिता निर्मित हो जाती है; अरी, वाणी से क्या बताऊँ मेरी बहना ! तू उनके विशाल, उन्मुक्त, बंकिम, नित-नूतन-शोभामय, प्रतिपल नवीन-नवीनतर दृष्टिगोचर होने वाले, सर्वत्र

रससुधा की सरिता बहाते रूप को देख तो सही, तब तुझे पता चलेगा कि उनकी तरुणाई और ललित लावण्य का विकास कैसा है ? अहा, उनके अंगों से कैसी दिव्य ज्योति प्रतिक्षण प्रसरित होती रहती है ? अरी, वे मात्र कृष्ण-कज्जल प्रतीत होते हैं, परन्तु सार की बात तो यही है कि दिनकर की रश्मियों में जो रंग हैं, वे इसी केशराशि के सुन्दरतम वर्णों की छाया की छाया ही तो हैं ।"

"तनिक सी म्लानता का लेश भी कदापि स्पर्श नहीं करता- मेरे प्रियतम (रानी की केशराशि) की ज्योति को । यह ज्योति ऐसी विलक्षण है कि अपनी आस्वादनीयता के गुण का कभी परित्याग नहीं करती । अपितु इनकी रमणीयता उत्तरोत्तर परिवर्द्धित होती रहती है । नित्य नवीन रससुधा का संचार करती रहती है , यह । निरवधि अपलक निहारते रहने पर भी नयन तृप्त नहीं होते । नित्य तरसते ही रहते हैं- पुनः पुनः दर्शन के लिये।"

"अरी बहिन ! मेरी आत्मा के आत्मा ये मेरी रानी के केश ही तो हैं । ये काले-काले कृष्णकुंतल मेरे असंख्य प्राणों के प्राण हैं । मेरे प्राणसारसर्वस्व, प्राणाराम, प्राणवल्लभ, चतुर चूड़ामणि, मेरे ये ही श्यामल सर्वस्व हैं।"

"देख बहिन ! तू अत्यन्त बुद्धिमान है री, ज्ञानगरिमा के आलोक में तूने अपने प्रिय का निर्धारण किस महाभाग्यवान को किया है, यह तू ही जाने। मैं तो अपना हृदय खोलकर तेरे सम्मुख रख गयी हूँ । मैं तो सचमुच यही अनुभव करती हूँ- अपने हृत्तल में प्रत्यक्ष देखती हूँ - ये मेरे प्रियतम नित्य नूतन रस से भरे ही रहते हैं।"

"अरी बहिन नलिनी ! मेरी एक अन्तिम प्रार्थना मान ले ! तेरे प्रिय से मुझे मिलाना तो तेरे वश की बात है नहीं और उनसे मिलने पर न जाने कैसी बेहोशी, मूर्च्छा, प्रलाप, सिसकियाँ, सखियों के सम्मुख प्रहसन, लोक-कुल का अपयश, आत्म-धिक्कृति -- न जाने क्या-क्या मेरी दुर्दशा होगी, परन्तु मेरे प्रियतम के तनिक से दर्शन तू सहज रुप में एक बार कर तो ले । मैं शपथपूर्वक कहती हूँ, बहन ! उन जादू भरे मेरे प्रियतम के नील श्रीअंग को देख लेने के अनन्तर तू अन्य सब को देखना ही स्थगित कर बस नेत्र मूँदे ही रह जायेगी । उनकी बंकिम छटा तो बस ऐसी ही निराली है री !"

यों कहती-कहती सुगंधा नलिनी से लिपट जाती है । फिर दोनों अपने-अपने कार्य -- सूखी औषधि बटोरने में लग जाती हैं ।

हाँ, तो उस दिवस नलिनी तो शीघ्रतापूर्वक अपनी आवश्यक सूखी काष्ठ औषधियाँ लेकर चली गयी थी, एकाकिनी सुगन्धा ही वनपथ से अपने निवास लौट रही थी । उसे सम्मुख ही नलिनीके प्रियतम नीलमणि मिल जाते हैं ।

उनके नवनीरदवर्ण श्रीअंगों पर पिंगल दुकूल झलमला रहा होता है । गुञ्जा की माला कण्ठ देश को विभूषित कर रही होती है । मस्तक पर मणिमय मुकुट, उस पर गुम्फित मयूरपिच्छ, कुञ्चित केशराशि, भाल पर विराजित मृगमद का बडासा बेंदा, उस नील मुखमण्डल का लावण्य, मधुरिमा, सरसता, कोमलता, कान्ति को देखकर सुगन्धा ठगी-सी रह जाती है ।

उनकी आँखों में असीम अनुराग भरा रहता है, सुगंधा के प्रति । उनके हाव-भाव मुख-मुद्रा से ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे उस पर प्राण न्यौछावर कर रहे हों । उनके हृत्तल में हिलोरें लेती अनुराग की ऊर्मियाँ ऐसी मनोहर होती हैं मानो उसे अपने हृदयमंदिर में संस्थापित कर लेने के लिये वे व्याकुलता की सीमा लाँघ रहे हों । सुगन्धा पर प्राण न्यौछावर करते वे वहीं पथ पर बैठ जाते हैं ।

अब भला वह नापित कन्या क्या करे ? वह तो अतिशय संकोच में गड़ जाती है । वे रानी के, उसकी स्वामिनी के प्राणवल्लभ हैं, उसके तन का कण-कण अनन्त कृतज्ञ है उनका । वह तो बिना मोल की दासी है उनकी । "हाय ! मुझ नीच जाति की दासियों की दासी से वे यह कैसा व्यवहार कर रहे हैं ?"

"परन्तु हाय ! कैसी विचित्र दशा है इनकी ? उन्मादी हो गये हैं, ये । कुञ्चित अलकें बिखर गयी हैं इनके भाल पर ; निर्निमेष विस्फारित नेत्रों से चारों ओर देख रहे हैं वे । इनको अपने तन की सुधि ही नहीं रह गयी है । परिधान का भी भान नहीं है इन्हें । ऊँच-नीच का भेदज्ञान भी अवशिष्ट नहीं रह गया है इनके मन में । फिर वेष-भूषा कहाँ, कैसी हो गयी है इनकी, इसे कौन सँभाले ?"

सचमुच ही प्रीति का पथ निराला है - सबसे पृथक् सर्वत्र स्वतंत्र है यह। यहां न नीतिगत बंधन है, न ही जातिगत मर्यादा, न ही लोकगत, वेदगत कोई अनुशासन ही । यहाँ न कोई ऊँचा है, न ही नीचा । चरित्रहीन अथवा चरित्रवान, पुण्यात्मा अथवा पापी ये सब शब्द ही यहाँ के भाषाशास्त्र में हैं ही नहीं । यहाँ तो, प्रीति की उद्गमस्थली वृषभानुजा से बस एकात्मताजन्य योग होना चाहिये । बस, यह निराविल योग होते ही ब्रजेन्द्रनन्दन अपने आप इस

प्रीति-धरा में, उसकी नवीन-नवीन दिव्य ऊर्मियों में उच्छलन उत्पन्न करने आ पहुँचते हैं । वे स्वच्छन्द खूब स्नान करते हैं इसमें । बस उस जुड़े हुए, जुड़ी हुई के प्राण, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सब कुछ वे जब तक निमग्न नहीं कर देते उछालते ही रहते हैं इन ऊर्मियों को । वे उस महाभाग्यवान गोपी को- गोपी तो उन्हें दिखती ही नहीं, उन्हें तो सर्वत्र उनके प्राणों की कोर, हृदय की प्रेम हिलोर वृशभानुजा ही भिन्न-भिन्न नाम एवं रूप ग्रहण किये दिखाई पड़ती हैं- अपने से पूर्ण एकात्म कर लेते हैं ।

वे, उसके श्रवण पुटों में अपनी मनोहारिणी गिरा भर देते हैं । बस, अब तो उसके कानों में या तो निरन्तर उनकी कोई रसभरी वाणी गूँजती रहेगी, अथवा उनकी मधुस्पंदी मुरली की तान । उनके इस मुरली रव और अधरों से निस्सृत स्वर की झंकृति के अतिरिक्त वह कुछ सुन ही नहीं पाती । अन्य सम्पूर्ण शब्दघोष के लिये उसके कान बहरे हो जाते हैं ।

तो लो, सुगन्धा के कानों में उन प्राणधन नीलसुन्दर की अमृतमयी प्रीतिवाणी भरने लगी - "सुगन्धे ! मेरी जीवन सर्वस्व !! अहा तू कितनी सुन्दर है, मैं तुझे अपनी आँखों की काली पुतलियों में छुपाकर रख लूँ । प्यारी! मेरे रोम-रोम की यह उत्कट अभिलाषा है । प्राणाधिके ! इतना ही नहीं, इन नयनों के सुगुप्त पथ से मैं तुम्हें ले जाऊँगा अपने उरस्थल के देश में और फिर अनुराग-रज्जु से बाँध लूँगा तेरे चरण-सरोरुहों को- अनन्त काल तक के लिये वहीं अपने हृदय में । फिर मेरी अप्रतिम सुन्दर निधि ! तुम निरवधि सदा सदा वहीं रहना ।"

अब सुगन्धा करे तो क्या करे ? उसके नयनों की काली पुतलियों में तो उनकी अनिन्द्य रूप-राशि पूरी की पूरी भर गयी है । उसके नेत्र उस रूपजाल में ऐसे फँसे हैं कि निकल ही नहीं पा रहे । यदि यही दशा उसकी जो अभी वर्तमान में है, नित्य निरन्तर बनी रही तब तो वह अन्य किसी वस्तु को भविष्य में कभी देख ही नहीं पावेगी । फिर तो केवल यही त्रिभुवनमोहनरूप ही उसका दृश्य अवशेष रह जायेगा । सकल दृश्य प्रपंच के लिये वह सर्वथा अंधी हो जायेगी ।

अहा ! इनके चरण कितने सुकोमल हैं - इन्हें तो रानी के बालों का आस्तरण बिछाकर, तब धरा पर अवतरित कराया जाये । इसीलिये तो रानी अपने तन के सुकोमलतम भाग- उरोजों पर भी इन्हें रखती सकुचातीं हैं, इस संकोचवश कि कहीं उनके उरोजों की कुचकर्णिका इन चरणों में गड़ नहीं

जाये । वे प्राणधन, अरे ! वे ही इस वनपथ में खड़े हैं । अहा ! कैसी दीन मुख-मुद्रा बनाकर वे उस एक साधारण दासियों की भी दासी नापित कन्या से याचकवत् प्रेम की भिक्षा माँग रहे हैं । उसका मन, बुद्धि के शासन से विद्रोह कर उठता है और चाहता है कि दौड़कर अपने प्राणधन को अपनी बाहुओं में बाँध ले । परन्तु उसकी हिचक यही है कि उसका यह व्यवहार किशोरीरानी की मानमर्यादा के सर्वथा अनुकूल नहीं होगा ।

ये रानी के प्राणपति हैं, उसकी स्वामिनी के जीवनसर्वस्व हैं, उसे तो मात्र उनके चरण-रज की सेवा का ही अधिकार है । इनके अंगों में रानी की अनुज्ञा लेकर वह तैल-मर्दन कर दे, चरण-संवाहन कर दे - यह तो उसका कर्तव्य हो सकता है, परन्तु अपनी स्वामिनी के प्राणनिकेत का प्रेम निवेदन वह कैसे स्वीकार करे ? ये राजाधिराज वृषभानुमहाराज के जामाता हैं, ये कुछ भी बोलें, कहें, करें, इन्हें सब क्षम्य है । वह तो इनकी बिना मोल की दासी है, उसके रक्त के कण-कण पर इनका अधिकार है, ये उसे कुछ भी कह सकते हैं, परन्तु वह इनकी प्रणयिनी हो - यह तो कल्पना भी वह नहीं कर सकती । अतः सुगन्धा धरती में गड़ी जा रही है । वह आकुल कण्ठ से मन ही मन प्रार्थना कर रही है :-

"हे धरती माता । मेरी रानी की मर्यादा में मैं कलंक लगाने वाली नहीं होऊँ । अभी तू फटकर मुझे अपने भीतर समाहित करले । मैं इस मर्यादाहीन लज्जास्पद स्थिति से किसी भी प्रकार बचना चाहती हूँ ।"

परन्तु हाय ! न तो भूमिदेवी ही उसकी प्रार्थना पर किञ्चित् विचार कर रही हैं, न ही ये नीलसुन्दर ही अपनी हठधर्मिता को त्याग रहे हैं । अहा ! उनकी कैसी प्रेममयी वाणी है । कितना रसामृत घुला है उसमें !

"प्राण प्रियतमे ! तुम ही तो मेरे शतसहस्र प्राणों की अधिदेवी हो, मेरे असंख्य प्राणों की एक मात्र प्रतिष्ठा हो । जीवनेश्वरि ! अपनी अहैतुकी कृपा का प्रकाश कर मुझे एक वस्तु का दान दे दो- चिर अभिलाषा सँजोये मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ । मेरे उद्विग्न प्राणों की लालसा यही है, इतनी ही है कि मेरी आँखें अपलक निहारती रहें केवल, केवल, तुम्हें निरवधि । मेरे मन के कण-कण में मेरे प्राणों के अणु-अणु, परमाणु-परमाणु में नित्य विराजित रहे तुम्हारा, बस तुम्हारा ही यह मुखचन्द्र । करुणामयि ! अपरिसीम करुणा का प्रवाह तुम्हारे इन लोल लोचनों से नित्य निरन्तर प्रसरित होता रहता है । उस प्रवाह की एक कणिका मात्र मुझे दान कर दो ! बस 'एवमस्तु' कह दो।"

यह कहते हुए लो, वे आगे बढ चले ।

"नहीं, नहीं, मुझ मलिन देह, अधम-प्राण, निकृष्ट कामुक-मना नाइन को आप स्पर्श नहीं करें," कहती हुई सुगन्धा का रोम-रोम निषेध की ज्वाला से दहक उठा । उसके नेत्र बरस उठे । वह अति मधुर स्वर में बोल उठी - "मेरे नीलचन्द्र ! मैंने आजतक रानी के सौदामिनी-सदृश कंचन वर्ण पद-द्वय ही अपने हृदय में विजड़ित रखे हैं । उनके अतिरिक्त अन्य किसी को भी अपने हृदय में स्थान दिया ही नहीं । रानी की कुंचित केशराशि की सेवा के अतिरिक्त मैंनें कुछ देखा नहीं, जाना नहीं ; और भविष्य में भी किंचित् भी देखना-जानना चाहती भी नहीं । साथ ही यह भी सत्य है कि मुझ कुरूपा, कुलच्छना, कुजाति की नाइन के लिए इसके सिवा सोचने-समझने को हो भी क्या सकता है ?"

"कथन मात्र के लिये 'स्व' के रूप में मुझ से सम्बद्ध जो भी था एवं है, उस सर्वस्व को तो सहज ही आत्यंतिक उल्लास के साथ मैं रानी को समर्पित कर चुकी हूँ । फिर आप मुझ से कुछ भी माँगे मेरे पास, आप रानी के प्राणवल्लभ हैं - इस नाते अदेय हो भी क्या सकता है ? परन्तु प्राणसुन्दर ! मुझ किंकरी को किंकरी ही रहने दीजिये । चरण-धूलि का स्थान चरण-स्थल ही है । वह मस्तक पर यदि उड़कर चढ भी जाये तो उसे परिचारिकाएँ झाड़ देंगी ? झाड़कर, कंघी से, स्नान से, उबटन से उसका निवारण और परिमार्जन कर दिया जाना ही अवश्यंभवी विधान है ।"

"मेरे स्वामी । मुझ निम्न घृणित जाति की, नीच कर्म करने वाली महामलिन नाइन देह का स्पर्श कदापि मत करिये, कहीं मेरे मलिन पापकर्मों की छाया आपका अमंगल नहीं कर दे, मैं भयभीत हूँ , मेरे नाथ ! मैं आपके द्वारा ऐसे सम्बोधनों की अधिकारिणी कदापि नहीं हूँ - फिर इस भाव से स्पर्श की जाऊँ यह तो कल्पनातीत बात है । मैं आपकी दासियों की दासियों की भी अनुदासी हूँ, मुझे अपनी स्थिति में ही रहने दीजिये । बस, बस, क्षमा करें स्वामी !"

नीलमणि, मूर्च्छित सुगन्धा को अंक में भर कर घने वृक्षों के कुञ्ज में ले जाते हैं । झर-झर नेत्र बरसाते वे उसे अपनी निराविल प्रीति में स्नान कराते हैं । सुगन्धा ज्यों ही दो क्षण के लिये स्मृतियुक्त होती हैं, तो यही पाती है कि नीलसुन्दर का परम सुखद, मादक स्पर्श सर्वथा व्यवधानरहित होकर उसकी त्वगिन्द्रियों में मूर्त्त हो रहा है । किसी अन्य संस्पर्श की क्षीणतम स्मृति

भी नहीं बची है उसके चित्त में । एक मात्र उनका ही स्पर्श उसके गात्र में अवशिष्ट रह जाता है । इतना ही नहीं, उसकी रसना भी नीलमणि के अधरपल्लवों से झरते मधुमय सुधारस से परिपूरित हो उठती है । अब बुद्धि के निषेध से मन कब तक वर्जित रहे । महारस-सिन्धु के उद्वेलन को तट चाहे कितना ही सुस्थिर हो, कबतके झेलता रहेगा, अन्ततः ढह ही जायगा। अतः प्रियतम के झुके सुधारस-परिपूरित अधर, कमनीय, अरुणिम गोल कपोल, रसीले नेत्र, बंकिम भ्रू-विलास, रसे मन्मथमथन के प्रेमजाल में उलझा ही देते हैं ।

वृजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र की मन्द स्मिति, कितनी मोहक है कैसी मादकता भरी है इसमें, इसका अनुभव वही कर सकता है, जिसे वे कराना चाहें । परन्तु जिस महाभाग्यवती अथवा महाभाग्यवान का ऐसा सौभाग्य संघटित हो जाता है, उसका अभिमान चूर-चूर हो जाता है, सम्पूर्ण बाह्यज्ञान निवृत्त हो जाता है, उसकी स्वतंत्र सत्ता रहती ही नहीं । बिचारी नापित कन्या सुगन्धा की तो बिसात ही क्या, मुनीन्द्र, अमरेन्द्र, मानवेन्द्र, दानवेन्द्र, खग, मृग, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज, कोई भी देहधारी आज तक तो दृष्टिगोचर हो न सका जिसकी अहंता इस मुसकान के दर्शन के अनन्तर भी जाग्रत् रही हो, सचेत रह सकी हो । सम्पूर्ण इन्द्रियों को जीतकर साधन की चरमोत्कृष्ट दशा में अवस्थित योगीगण, कायिक, वाचिक, मानसिक तपःपूत तपस्वीगण, ज्ञान की गरिमा में पूर्ण-प्रतिष्ठित, तमोगुणजनित अज्ञता से सर्वथा दूर रहने वाले ज्ञानीवृन्द, त्याग की जीवन्त प्रतिमा, सुख की भ्रान्ति सृजन करने वाले जागतिक भोगों को चित्त से सर्वथा बहिष्कृत कर देने वाले त्यागी, ये सभी बिक जाते हैं नंददुलारे के कोटि-कोटि शशधरों की कान्ति बिखेरने वाले लावण्ययुक्त मुखमण्डल की हास्य छटा को देखकर ।

फिर यह साधारण राधा-दासी सुगन्धा कैसे प्राणसुन्दर नीलमणि के सभी आयुधों के प्रहार सह पा रही है ? इसका उत्तर यही है कि रानी के प्रति इसके अगाध समर्पण ने इसके हृदय में तत्सुख-भाव इतना सुदृढ़ कर दिया है कि तत्सुख-भाव-भावित हुई यह प्रियतम का सुखानुसंधान करने में हीं पूर्णतया निरत है । स्वभोग लालसा की छाया भी इसे स्पर्श नहीं कर पा रही है ।

इसीलिये सुगन्धा के विचार इसी केन्द्र-बिन्दु पर उमड़-घुमड़ रहे हैं । "हाय ! मेरे प्रियतम को यह क्या हो गया है ? कैसे व्यामोह में ये पड़ गये हैं ? मुझ महाकुरूपा में निश्चय ही इन्हें रानी की मुखशोभा दिख रही है ।

इसी से ये उन्मादग्रस्त हुए इस प्रकार का अनर्गल, असंगत प्रलाप कर रहे हैं। "सुगन्धा प्रियतम के बाहु बँधन में बँधी रोम-रोम की आकुलता से अपनी स्वामिनी किशोरीरानी को पुकारने लगती है ।

"हे मेरी स्वामिनी ! मेरे रोम-रोम की आकुल पुकार सुन ले री ! मैं तेरे जीवनधन इस नीलमणि को कैसे समझाऊं ? ये तेरी प्रीति में उन्मादी हुए मेरे तन में तेरी रूपगरिमा भरी देख रहे हैं । मुझ सी सर्वथा अयोग्य को अपना अनाविल प्यार दान देकर ये अपार दुःखराशि को आमंत्रण दे रहे हैं । और हाय रे ! उसी को अप्रतिम सुख भी मान बैठे हैं वे ।

"ओह ! मेरी प्राणसहचरी ! तू ही कोई उपाय कर जिससे इनकी यह अतिशय दुस्साध्य व्याधि दूर हो सके । इनका यह मोह रोग मिटाना मेरे तो सर्वथा वश का नहीं है । आज न जाने कौन से विपरीत ग्रहों की छाया मेरे इन प्रियतम पर पड़ गयी है । अहा ! कैसा भीषण व्यामोह है कि चराचर के समस्त सुखों के सर्वथा उत्सरूप मेरे प्रियतम मेरे कारण अपार सुखों से सर्वथा वंचित हो जावेंगे । अब मैं क्या करूँ ? मेरे वश में तो कुछ भी रहा नहीं है। मेरे अन्तस्तल में तो जैसे शूल चुभ रहा हो, शूलभेदन जैसी पीड़ा हो रही है मेरे रोम-रोम में । हाय ! ललितारानी को जैसे ही पता चलेगा - इस नापित कन्या से प्रियतम ने रमण किया है, वह तो फिर इन्हें रानी के कुंज में प्रवेश ही नहीं करने देगी ? वे अतिशय कोपवती हुई मुझे रानी की सेवा से ही वंचित कर देंगीं । मेरा तो चाहे जो हो, परन्तु ये परम रसमर्मज्ञा, सर्वसुखदान में अतिशय निपुणा, अप्रतिम सुन्दरीरानी के बिना भला कैसे सुखी हो सकेंगे ? कदापि नहीं । हाय ! मुझे तो इनका सुख इसमें ही दिखाई पड़ रहा है कि शीघ्र से शीघ्र इनका यह भयंकर व्यामोह दूर हो जाय।"

और इसी समय एक विलक्षण संयोग संघटित होता है । आज रानी नन्दभवन पाक रचनार्थ जाने के पूर्व सुगन्धा के गृह जाने की इच्छा कर लेती हैं । उनमें सुगन्धा को कोई अलंकार उपहार देने की इच्छा परम प्रबल हो उठती है । अतः वे सुगन्धा को ढूंढने उसके गृह की ओर जाने वाले वन की ओर चल निकली हैं । पथ में ही उन्हें सुगन्धा के पद चिन्ह यहां से सघन वन में वृक्षों की ओर गये दृष्टिगोचर हो जाते हैं ।

अहा ! कानन की धरा को प्रिया श्रीराधाकिशोरी ने किस अद्भुत कृपा प्रसाद का दान किया है । प्रियारानी के आगमन से वह धन्य-धन्य हो रही है। रानी के मृदुल सुकोमल अनावृत चरणतल कानन की धरा पर संचरण

करें, धरा क्या, धरा से सम्बद्ध सभी तृण-वीरुध, दूर्वा, कुश आदि भी धन्य-धन्य हो रहे हैं । रानी कुछ दूर ही वन में आगे बढ़ी होंगी कि प्रियतम नील सुन्दर के चरण चिह्न भी दृष्टि में पड़ जाते है । रानी के साथ ललिता, मंजुश्यामा, मंजुलीला, विशाखादि सभी सखियाँ हैं साथ ही मंजिष्ठा धोपानी भी है। रानी के मुख पर प्रियतम के चरण-चिन्ह देखकर मन्द मुसकान आ जाती है । ललितारानी की आँखों में अभिनव मनोरम-कौटिल्य तो नित्य समाया रहता ही है, थोडी नेत्रों में लालिमा और बढ़ जाती है । उनके आनन-सरोज में विराजित अनुपम रसमयता में मिश्रित हो जाता है- विलक्षण मानजन्य प्रिय को अनुशासित करने का भाव ।

किन्तु किशोरी के प्राणों में तो विलक्षण प्रीति का संचार हो रहा है । वे सोच रही है - "कोई भी हो, कैसी भी हो, जो एक बार भी मुझसे जुड़ चुकी है, उसे तो प्राणवल्लभ अपनायेंगे ही । उससे उपरत वे हो ही नहीं सकते । अहा ! सुगन्धा प्राणों में कैसी उत्कण्ठा संजोये मुझसे जुडी है । फिर सांवर मेरे प्राणप्रियतम जो एक मात्र मेरी ही निधि हैं, मेरी ही वस्तु हैं वे उसे क्यों कर कण्ठ नहीं लगावेंगे । वे तो सुगन्धा में मुझे ही देख रहे हैं । जिसने मेरे चरणों को थाम लिया, उस सुगन्धा में उन श्यामल चंचरीक ने मुझ चम्पा की ही गन्ध तो पायी है, फिर वह उस पर समाकृष्ट क्यों नहीं होगा ? और सुगन्धा तो अतिशय मृदुल हृदया है, अभिमान, गर्व तो उसे छूकर ही नहीं गया है, कितना समुज्ज्वल हृदय है उसका । वह तो सर्वथा सर्वांश में मेरे मुख पर सदा सर्वस्व न्यौंछावर करती है फिर मेरे प्राणवल्लभ, प्राणरमण राधा दासी सुगन्धा की अप्रतिम निष्ठा का पुरस्कार न दें, यह कैसे संभव है ? वे उसे कभी भी विसार नहीं सकते ? रानी गुन गुना रही हैं -

प्रीतम प्रीति ही तैं पइये ।
यद्यपि रूप गुण शील सुघड़ता इन बातन न रिझैयें ।
सतकुल जन्म कर्म शुभ लक्षण वेद पुरान पढैयें ।
गोविन्द बिना नेह सौं आली, रसना कहा नचैये ।

रानी के मन में मधु का स्रोत उमड़ चला है । उसके भाव में उसे उसके प्रियतम अतिशय कृतज्ञता प्रकाश करते कह रहे हैं - "प्राणवल्लभे ! तुम्हारे चरणों में सर्वस्व समर्पण करने वाली ये किंकरियाँ जो अभिमान-मद

को सर्वथा गलाकर रज:कणिकाओं की तरह तुम्हारे चरणों में संलग्न हैं, मुझे तो प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं । हे दयामयि ! चाहे वे नापित हों, चाण्डालिनी हों, रजकिनी हों, मालिन हों, हड्डिप कुल में जन्मी हों, जब तुमने इन्हें अपनी नित्य सेवा-सन्निधि प्रदान कर दी, तब मैं इन्हें कैसे त्याग सकता हूँ । तुम्हारे चरणों से जुड़ते ही इनका निवास तो मेरे हृदय आसन पर हो ही गया। क्योंकि तुम्हारे युगल चरण अनादि काल से मेरे हृदय के ही अलंकार थे, हैं और निरवधि रहेंगें । मेरे प्राणों की रानी ! फिर इस सुगन्धा के पवित्र हृदय को तो तुम स्वयं जाँच लो, परख लो । यह महा महिमामयी तो, हे, मेरी प्राण संजीवनी ! तुम्हारे चरणों को सर्वथा एक निष्ठ अपने हृदय में स्थापित किये है । मैं तो इसका निरवधि ऋणिया हूँ ।" अपने प्रियतम की परम प्रेममयी भाववाणी सुनते-सुनते रानी के नेत्र अनर्गल अश्रु प्रवाहित करने लगते हैं । वे ललिता के कंधे का सहारा लेकर उस सघन वृक्ष कुंज के भीतर प्रवेश कर जाती हैं ।

रानी और सभी सखीमंडली के सम्मुख कुंज के भीतर का दृश्य उजागर हो उठता है । सुगन्धा की आकुल प्रार्थना-शब्दावली रानी के कर्ण विवरों में सुधा प्रवाहित कर देती है:-"मेरी स्वामिनी ! मेरे रोम-रोम की आकुल पुकार सुन ले री । मैं इन नीलमणि, तेरे जीवनधन को कैसे समझाऊँ ? वे तेरी प्रीति में उन्मादी हुए मेरे तन में तेरी प्रीति-गरिमा भरी देख रहे हैं । मुझ सी सर्वथा अनधिकारिणी को ये अपना अनाविल प्यार दान देकर अपार दु:खराशि को आमंत्रित कर रहे हैं ।"

रानी के आवेग को सखियाँ रोक नहीं सकीं । वे लताजाल को चीरकर कुंज के भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं । वे दौड़कर सुगन्धा को अपनी गोद में ले लेती हैं । उनके नेत्र प्रेमाश्रुओं से झरते सुगन्धा के मस्तक को भिगो रहे हैं। रानी की बाहुओं में बँधी सुगन्धा सर्वथा बेसुध-विमुग्ध है । उसकी दोनों भुजायें बद्धाञ्जलि की मुद्रा धारण किये है । उसका रोम-रोम उद्घोष कर रहा है ।

"जिसमें मेरी रानी के प्रियतम प्राणनाथ नीलसुन्दर निरवधि सुखी रहें बस वही विधान हो, हे भगवान् नारायण ! मैं आपकी शरण हूं, मेरी रानी के जीवनसर्वस्व के सम्मुख अनन्त अपरिसीम अनुपम सम्पूर्ण सुख नित्य अभिव्यक्त रहे । हे प्रभो ! हे विधाता ! मेरी यह लालसा पूर्ण हो । हो गयी, हो गयी, हो ही गयी ।"

"हाय ! यह सुगन्धा कैसी गंगा-यमुना सी पवित्र है । धन्य है इसकी माता सुधर्मा, धन्य, धन्य हैं इसके पिता नापितराज सुबोधनजी और धन्य है इसका कुल ।" सभी सखियों के नेत्र प्रेमाश्रुप्रवाह से झर-झर बरस रहे हैं । रानी ने बाह्य-ज्ञान-शून्य पाटला को गोद में ले लिया है । रानी के प्रेमाश्रुप्रवाह से पाटला का वक्षस्थल भीग गया है । ललितारानी के नेत्र भी झर-झर बरस रहे हैं । एक कोने में खड़ी मंजुलीला सुबक रही है । मंजुश्यामा, रानी को सम्हालती हुई एक ओर रो रही हैं । उनके हिचकी बँध गयी है । प्रियतम अपना उपरैना शीतल जल से गीला कर लाये हैं और निचोड़ रहे हैं पाटला के मुग्ध नेत्र-मुँदे आनन पर ।

रह-रहकर सुगन्धा के ओठ बुदबुदा रहे हैं - "मेरे प्राण रौरवादि नरकों में भले ही जलते रहें । हाय ! ललितारानी जैसे ही जानेंगी कि इस कलमुँहीं नाइन से प्रियतम ने रमण किया है, वे अतिशय कोपवती हुईं इनको रानी के निकुंज में ही प्रवेश नहीं करने देंगीं । हे विधाता ! ये रानी से विहीन कुम्हलाऐ कमल से क्लान्त मुख, निकुंज के द्वार के बाहर निम्नग्रीवा आसीन हुए होंगे - उस समय मेरे प्राण उस अथाह ग्लानि को कैसे सह पावेंगे ? हे विधाता, ऐसा विधान करो जिससे इन नीलसुन्दर को अपार अनन्त निरवधि सुख सौभाग्य मिले । हे धरादेवी ! फट पड़ो और मुझे अपने गर्भ में निहित कर लो ।"

रानी सुगन्धा का मुख बन्द कर देती हैं । रानी के द्वारा मुख बन्द किये जाने पर सुगन्धा नेत्र खोल देती है । वह रानी का मुखारविन्द अपने पर झुका हुआ पाकर विस्मय से भर जाती है । अहा ! पूर्ण विकसित अरविन्द के समान रानी का आनन कैसी वात्सल्यराशि सुगन्धा पर वर्षा कर रहा है- इसे कैसे भाषा दी जा सकती है ? सौरभ का पुंज उसके कण-कण से झर रहा है। बदन सरोज में अभिनव प्रेमामृत मधुर-मधु परिपूरित है ।

इस प्रफुल्लित सुखसरसिज की अपनी सखी पर ऐसी निरुपम वात्सल्य वर्षा देखकर सभी सखियाँ प्रफुल्लित हो उठी हैं । इस विलक्षण शोभामय मुखसरोज के मधु से आकृष्ट प्रियतम के लोचन चञ्चरीक मतवाले हो उठे हैं। वे अतिशय व्यग्रता तथा परम उत्कण्ठा लेकर इस सरोज के मधुपान में सर्वलज्जा त्याग संलग्न हो उठते हैं । किन्तु इन मधुलोलुप को भला तृप्ति कहां ? अपितु इनकी मधुपान-लालसा प्रतिक्षण बढ़ती ही चली जा रही है ।

सुगन्धा को विश्वास ही नहीं हो पाता कि वह रानी की गोद में हैं । उसे क्षणभर प्रियतम का मुख दिखता है फिर रानी का । वह बिलख उठती है- "तुम स्वामिनी हो कि प्रियतम, मैं निर्धारित नहीं कर पा रही हूँ । परन्तु क्या सच, मेरी स्वामिनी ! तुम मुझ अधमा की पुकार पर खिंची आयी ? क्या मेरी व्याकुल प्रार्थना ने तुमको मुझ तक पहुँचा दिया ? मेरी हृदयेश्वरी ! अपने इन हृदयेश्वर को सँभालो" - यह कहती सुगन्धा ने पास ही आसीन श्यामसुन्दर का हाथ पकड़कर रानी के कर-सरोज में विधृत करा दिया । और स्वयं प्रेमावेशवश मूर्च्छित हुई लुढ़क जाती है, रानी की गोद में ?

अब भला इस दशा को प्राप्त सुगन्धा भी मंजिष्ठा की क्या सहायता करेगी? स्वयं अंधा, अंधों को मार्ग दर्शन नहीं ही करा सकता ? परन्तु एक दिवस इस सुगंधा के सम्मुख भी मंजिष्ठा अपनी समस्या रख देती है । सुगन्धा तो मंजिष्ठा के चरणों में ही गिर जाती है । उसके चरणों की धूलि वह अपने मस्तक पर धारण करने लगती है । कहती है - "बहन ! तेरे पास प्रियतम का पीताम्बर मंजुलीला बहन प्रतिदिन स्वच्छ करने भेजती है, इस पीताम्बर को साधारण अम्बर कदापि मत मान लेना ? अरी रानी के अंगों का वर्ण और रानी भिन्न थोडे ही हैं । रानी का राधा नाम, रानी का रूप, रानी के गुण, रानी के निवास महल, रानी का ग्राम-धाम सब पूर्णतया रानी, साक्षात् हमारी प्यारी रानी ही हैं । अरी मूर्खा ! इन्हें कहीं कूटती-पीटती तो नहीं है ? अरी इन सबमें यदि तुझे कुंकुम पंक लगी मिल जाय तो उसे धोकर फेंक मत देना, मुझे बुलाकर दे देना । मैं अपनी सखी माणिकी को वह दे दूंगी । और सुगन्धा दौडी-दौड़ी सचमुच ही माणिकी को पकड़कर न जाने कहां से ले भी आयी । माणिकी के साथ प्रेमवती और नलिनी भी चली आयीं । टोकरों में असंख्य रँगों के विलक्षण सौरभ-प्रवाह से सम्पूर्ण क्षेत्र को मह-मह महकाते पुष्प भी आ गये ।

सभी सखियों की समवेत लीला

अब तो सुगन्धा गुरु बन गयी । नलिनी ने सुन्दर पुष्प मन्दिर निर्माण कर दिया और प्रेमवती एवं माणिकी पुष्पासन, पुष्प शय्या, पुष्पालंकार बनाती बनाती पगली ही हो रही थीं । सुगन्धा ने मंजिष्ठा से रानी के नीले वस्त्र और पीताम्बर उस पुष्पासन पर विराजित कर दिये और रंगरागा की प्रियदर्शन की लालसा तो असीम हो उठी । और जब किसी की भी यह

लालसा असीम हो उठती है तो उसे प्रियदर्शन होते ही हैं । भाग्यवती और पुण्यपुञ्जा नृत्य करने लगीं । सुगन्धा रंगरागा से कहती है - "अरी निगोडी मेरी आँखों को अपनी आँख बनाकर देख, कुछ दिखा ? बस, रंगरागा उन्मादिनी हो जाती है, वह तो एक ही रट लगा रही है -"दिख गये री, दिख गये, मिल गये री, मिल गये ।" मंजिष्ठा भी नृत्य करने लगी । सबके पैरों मे न जाने कहाँ से घुंघरू विजड़ित हो गये हैं । घुंघरू झँकार कर रहे हैं।

इन सभी पगलियों, उन्मादिनियों को होश कहाँ है । अनवरत नृत्य-गान चल रहा है । न दिन का पता है, न रात का । सबकी ऐसी विलक्षण दशा है कि यदि कोई बाहर का व्यक्ति इनमें से किसी एक को भी स्पर्श कर ले तो निश्चय ही ऐसा भाव का वेग उसमें जाग उठता है कि वह भी नृत्य करने लगता है । सम्पूर्ण रजक, मालिन, नापित एवं हड्डिप परिवार सब का सब रानी के पास चला आता है । सभी सखियों सहित रानी आकर उस पुष्पासन पर विराजित हो जाती हैं । नीलसुन्दर देव तो ऐसे अवसर खोजते ही रहते हैं। वे भी रानी के पार्श्व में ही आ विराजतें हैं । ललितारानी ने वीणा सम्हाल ली है । तुंगविद्याजी ने गायन प्रारंभ कर दिया है । विशाखा मृदंग बजा रही हैं । क्या ही भावावेश है सभी को ? जो भी होशरहित हुई जैसे ही गिरने लगती है, रानी अथवा प्रियतम सम्हाल लेते हैं उसे । रानी का अंक सभी का प्रेमाश्रय जो है । नदियाँ सिन्धु-गर्भ में ही तो समाहित होंगी ? समग्र वृषभानुपुर रानी का ही तो कायव्यूह रूप है । जहाँ से जिसका उद्‌भव है, वहीं तो वह विलय होगा । महाभाव-सिन्धु की कैसी विलक्षण तरंगें हैं ।

इन तरंगों में डूबते-उतराने का क्रभी हम पामर जीवों का भी सौभाग्य होगा - निश्चय, निश्चय, निश्चय ही- रानी की चरणधूलि का आश्रय लेने वाले कृतार्थ होगें ही ।

सारिका प्रसंग

(यहाँ इस परिच्छेद में उन लीलाओं का अनुशीलन है जो, पू० गुरुदेव जब सारिका भाव में स्थित थे- उस समय उनके अनुभव में आयी थीं । पू० गुरुदेव श्रीराधाबाबा तो लीला-महासिन्धु थे। उनकी हेतुरहित महाकृपा इस महाअधम पामर जीव पर थी, जिस कृपा के वशीभूत हुए वे परम अनधिकारी मानते हुए भी यदा-कदा लीला-महासिन्धु की एकाध ऊर्मि के छींटे इस अधम जीव पर डाल देते थे । उन दो-चार ऊर्मियों का ही यहाँ पाठकों के लिये उल्लेख है । वैष्णवजन इनका अवगाहन कर अवश्य कृतकृत्य होंगे ।

पू० गुरुदेव लगभग दो-तीन मास सारिका भाव में रहे । उन्होंने मुझे अपनी तृण-भाव में जब वे वृन्दावन में थे, उस समय की भी एक लीला सुनाई थी, उस लीला का भी आगे प्रकाश किया गया है ।)

सारिका प्रसंग: प्रथम लीला

सारिका का प्रादुर्भाव

अहा-देखो ! भगवती श्रीराधारानी स्नान करने जा रही हैं । निकुञ्ज महल के चतुर्दिक् सघन कदम्ब वृक्षावली हैं । मंजरियाँ एवं सखियाँ विभिन्न कार्यों में व्यस्त हैं । कोई उबटन तैयार कर रही है, कोई चन्दन घिस रही है । कोई छोटी-मोटी कटोरियों में विभिन्न फुलेल डाल रही है । कोई श्रीप्रिया के पहनने के वस्त्राभूषणों को निकाल कर सजा रही है ।

सम्मुख कुछ ही दूरी पर गिरिस्रोत बह रहा है । घाट परम मनोरम हैं। कुछ सखियाँ रानी के पूर्व ही स्नान कर चुकीं हैं। वे घाट से लौट रही हैं। कुछ मंजरियाँ एवं सखियाँ अपना स्नानादि कार्य प्रिया से पूर्व ही सम्पन्न कर लेना चाहती हैं । वे अपने वस्त्र अपने साथ ही लिये घाट की ओर जा रही हैं । घाट तक पथ में आवागमन का ताँता लग रहा है । कोई अपने केशों में कंघी कर रही है, कोई शीघ्रता से वेणीबंधन कर रही है, कोई अपने सुन्दर रेशमी वस्त्रों को सूखने के लिय फैला रही है, कोई अपने नेत्रों में अंजन कर रही है ।

सघन कदम्ब वृक्षावली के पश्चात् जामुन वृक्षों की पंक्तियाँ हैं । जामुन के पीछे बिल्व वृक्ष लगे हैं, इधर दक्षिण में बेर हैं और आगे दाड़िम के अति मनोहारी वृक्ष हैं । पथ के दोनों ओर दाड़िम वृक्षों की शोभा विलक्षण है । आगे कदली वन हैं । सभी वृक्ष पुष्पित हैं और उनमें भ्रमर गुंजार कर रहे हैं।

इन वृक्षावलियों को चतुर्दिक् घेरे जो क्षुप, वीरुध-श्रेणियाँ एवं लता वल्लरियाँ हैं, वे मनोहारी कोमलकिसलय समूह से घिरी हैं, और उनमें विकसित, उल्लसित एवं सुरभित, सुमन सर्वत्र आनन्द प्रवाहित कर रहे हैं ।

भावसमुद्र का अनिर्वचनीय नित्य अभिनव उच्छलन वनस्थल के वृक्ष-वृक्ष मे लता-वल्लरियों में, सुमन-सुमन में हो रहा है फिर भला रानी पार्श्व में ही

स्थित रहकर इस प्लावन का, इस भाव-प्रवाह का अनुभव न करें, यह कैसे संभव है ?

रानी अपने भाव में डूबी हैं । वे देख रही हैं - परम रमणीय वृन्दावन है । अहो, कैसी अद्‌भुत बात है कि उन की जिधर दृष्टि जाती है, उधर ही अप्रतिम अनुराग के निर्झर झर रहे हैं । सर्वत्र अप्राकृत भावोच्छ्‌वास की उन्मत्त पयस्विनियाँ प्रसरित हो रही हैं । वे अनुभव करती हैं कि उनके इस दृश्य जगत् के समस्त अधिवासियों की सम्पूर्ण वृत्तियां केन्द्रित हैं पूर्णतया व्रजमयंक पर ही । वृक्ष-लता-वल्लरियाँ, कीट-भृंग, स्थावर-जंगम, सबके सब अनुप्राणित हैं उनके नीलम के प्राणों से ही । सभी के प्राणों की एक ही चिर साध है - "ब्रज के चन्द्रमा ! सुखी रहो तुम ! तुम्हारे सुख-संवर्धन की भूमिका का निर्माण ही सदा हम सभी के द्वारा हो । कभी स्वप्न में भी तुम्हारे सुख का विघातक कोई भी नहीं बने ।" किशोरी विचार करने लगती है-"हाय ! इस वन में तृणों में भी जब मेरे प्रीतम नीलम के प्रति ऐसी अगाध निर्मल प्रीति है, फिर विधाता ने मुझे ऐसी कठोर वज्र के समान हृदय वाली क्यों बनाया है ? देखो ! देखो ! इन वृक्षावलियों पर बैठे शुक, सारिका, कपोत, कपोती सभी तो मुझसे श्रेष्ठ हैं, ये सभी प्राणरमण नीलमणि को अपने नेत्रों की पुतरियों में बसाये हैं । ये पक्षी ही नहीं, ये ऋतुएँ भी राशि-राशि कमलों का उपहार देने उमड़ पड़ती हैं । इन ऋतुओं की यहाँ कोई कालावधि ही नहीं है । एक भूखण्ड में प्राणवल्लभ चरण रखें तो शरद सोलह श्रृंगार किये समुपस्थित हो जाती है । तत्क्षण ही दूसरे पार्श्व के भूखण्ड पर उनके चरण रखते ही हेमन्त नवधान्यों का अम्बार लगाकर प्राणसुन्दर की अर्चना करने को अति समुत्सुक खड़ी दृष्टिगोचर हो जाती है । देखो ! नन्दनन्दन यदि मुसका उठें तो शिशिर क्यों चूके भला, वह ओसकणों की मुक्ताओं की असंख्य मालायें पिरोकर प्राणवल्लभ का पथ सजाती सम्मुख उपस्थित हो ही जाती है । और वसन्त तो उनके नेत्रों में काजल-सी सदा लगी ही रहती है । वे जिधर भी दृष्टि डालें वह कुसुमित वल्लरियों का, मुकुलित आम्र शाखाओं का वितान निर्मित कर आकुल हृदय से पुकार उठती है -"हे प्राणरमण ! हे मेरे जीवननिधि !! हे हृदयधन !!! इस आस्तृत सुमन शैया पर एक क्षण विश्राम कर लो । देखो, मैं मलय-मारुतरूप व्यजन तुम पर अपने हाथों डुलाऊँगी । इस ग्रीष्म ने जो भी श्रान्ति देकर तुम्हारा स्वेद बहाया है, वह सब श्रान्ति मैं हर लूँगी । देखो, मेरे हृदयधन ! मैं कोकिला के परम मधुर सुरीले कंठ के

'कुह-कुहू' गान से तुम्हारा मनोभिनन्दन करुँगी । और लो ! ग्रीष्म इस एक भूखण्ड में डेरा जमाये शान्त प्रतिवाद कर रहा है । कहता है - "प्राकृत शरीरधारी मेरे स्पर्श से भले ही जलें, उन्हें मैं भले ही प्रिय नहीं लगूँ परन्तु हे, मेरे प्राणवल्लभ ! मेरे जीवनसर्वस्व !! तुम्हारे लिये तो मैं सर्वथा-सर्वथा अपना स्वभाव बदल चुका हूँ। मैने अपने तपनशील ज्वालामय वस्त्रालंकारों को अन्यत्र सुदूर दूसरे प्राकृत स्थानों में फेंककर ही तुम्हारे इस मनोरम वृन्दावन में अपने चरण रखे हैं । प्राणवल्लभ ! कालमान से गणना करके कोई भले ही कह दे कि यह ग्रीष्म है, परन्तु तुम्हारे समीप हे व्रजसुन्दर ! मेरे दाहक गुण कदापि-कदापि व्यक्त नहीं हो सकते । मेरे समस्त अस्तित्व में ही मेरे सर्वस्व ! तुम्हें वसन्त की सुषमा को भी तिरस्कृत करने वाली मनोरमता मिलेगी ।" किशोरी देख रहीं हैं - सचमुच ही ग्रीष्म ने अपने वनभाग की निराली शोभा बना दी है । अगणित निर्झरों के झर-झर शब्दों में झींगुरों की कर्णकटु ध्वनि सर्वथा दब गयी है । अहा ! ये प्रपात भी असंख्य जलकण निरन्तर उच्छलित कर, मेरे प्राणधन नीलमणि की कैसी आनन्ददायिनी सेवा करने को समुत्सुक हैं । सम्पूर्ण वनस्थली ही इन निर्झरों से सिक्त हो उठी है। मेरे प्राणप्यारे के चरणों को सुशीतलता देने के लिये हरित दूर्वा का आस्तरण सर्वत्र आस्तृत है । देखो, देखो ! ये सरितायें, ये सरोवर, ये प्रपात और कुछ भी सेवा नहीं कर सकें तो इस मलय मारुत को अपने स्पर्श से अति शीतल कर मेरे प्रियतम को सुख देने की अपनी स्पृहा तो अवश्य ही प्रकट कर दे रहे हैं । देखो ! ये पद्म, नीलोत्पल, कुमुद अपनी मकरन्द इस व्रजपुर की परिक्रमा करती वायु को सौंपकर सुना क्या निवेदन कर रहे हैं, तनिक सुनो तो - "हे सखि समीर ! तुम तो बहिन ! अमृत सहोदरा हो, तुम अपनी मन्द मन्थर गति से झुर-झुर रव उत्पन्न करती प्रत्येक वृन्दावनवासी को सुधास्पर्श कर सुखदान करती रहती हो । इसीलिये किसी भी काननवासी को ग्रीष्मकालीन सूर्य की अग्नि के ताप की अनुभूति ही नहीं होती । एक तुच्छ सी सेवा हमारी भी कर दो, न ? हमारे प्यारे नन्दनन्दन जहाँ भी हो, हमारी यह किंजल्क तुम अपने आँचल में भर कर ले जाओ और उनके चरण सरोजों में समर्पित कर देना और यदि तुम्हारा ऐसा साहस नहीं ही हो सके तो उनके चतुर्दिक् ही इसे उड़ा देना ।"

देखो ! न इन प्रपातों के प्रेम प्रयास के कारण घोर निदाघ में भी रवि की रश्मियाँ कानन के धरातल का रस-शोषण नहीं कर सकीं । सर्वत्र

हरियाली ज्यों की त्यों बनी है । यहाँ की तरुराशि, लताएँ वैसी-की-वैसी राशि-राशि कुसुमों के भार से अभी भी नमित हैं । कण-कण से सौन्दर्य का स्रोत वैसे-के-वैसे प्रसरित हो रहा है ।

देखो । ये कलरव करते विहंगम, ये मनोहर संचरण करते मृग, अपने केकारव द्वारा नीलघन को निरन्तर पुकारते मयूर, मधुर गुञ्जन करते भ्रमर, कूजन करती कोकिल, सभी तो नीलसुन्दर को अपने हृदय में बसाये हैं । इन सभी के हृदय में भले कोई भी झाँककर देख ले, सभी को विलक्षण अनुराग रज्जु में बँधे मेरे प्राणधन नीलमणि के चरणसरोरुह ही दृष्टिगोचर होंगे । इनके हृदयों में ही नहीं इनके रोम-रोम में अनन्त काल तक के लिये मेरे नीलम ने प्रेम-परवश होकर नित्य वास कर लिया है ।

"मेरे प्यार के निस्सीम कोश- मेरे प्रियतम को, मेरी अप्रतिम सुन्दर निधि को ये सभी अपने अन्त:करणों में निरुद्ध कर चुके हैं और हाय ! मेरा जीवन कैसा वीभत्स है कि उसमें मात्र स्वसुख लालसा ही स्वसुख लालसा, आत्मपूजा ही आत्मपूजा परिपूर्ण है।"

"हाय कैसी कठोर हूँ मैं । वज्रमणि भी ऐसी नीरस एवं कठोर तो नहीं ही होती होगी । वज्रमणि को वज्रमणि से तो चूर्ण-चूर्ण किया ही जा सकता है। मेरे हृदय में लबालब भरे घोर अहंकार का तो सर्वत्र वर्धन ही वर्धन होता है, वह तो किसी भी प्रकार चूर्ण हत, होता ही नहीं । फिर ऐसे कठोर गर्व- भरे, मदयुक्त अहं को प्रीति जैसी सरस, सुकोमल भावराशि भला कैसे मसृण कर पावे ।"

वे मन ही मन अपने प्राणवल्लभ से अपने मन की वार्ता निवेदन कर उठती हैं । नित्य सुन्दर जीवनधन ही तो उसके निजस्व हैं । यह नवजलधर-श्यामल रूप ही तो उनके अणु-अणु की ऊर्जा है । नव-मेघश्यामल तत्व से ही तो उसका अणु-अणु सिक्त है । वे मन ही मन अपनी दैन्य भरी प्रार्थना अपने प्रियतम के चरणों में निवेदन करने लगती हैं - "नीलम रे ! मेरे हृदय में तो मात्र मेरा अहंकार ही अहंकार सक्रिय है । फिर भला वहाँ तुम्हें स्थान कैसे मिल पावे ? मेरा चित्त इतना मलिन है कि प्राणवल्लभ ! तुम्हारी स्मृति मेरे चित्त को छू ही नहीं पाती । बहुत प्रयास से किसी प्रकार तुम्हारी स्मृति करती हूँ, तो वह स्थिर नहीं रह पाती ! भोग-वासनाओं की चंचलता उस स्मृति को, स्मृतिरूप तुम्हारे इन महामरकतद्युति अंगों को, तुम्हारी श्यामल सुकुमार छवि को मेरे हृदय देश में अंकित ही नहीं होने

देती। प्राणाराम ! अब बोलो ! मुझ महातुच्छा महा-महानगण्या के पास तुम्हें देने को बचा ही क्या है ? हाय ! हाय !! तुम्हारी स्मृति और तुम्हारे चिन्तन से शून्य मेरे जीवन को धिक्कार है।"

"मेरे नेत्रों में जब तुम्हारी मूर्ति ही नहीं ठहर पाती है तो ये निरर्थक नेत्र फिर जलनिधि में रहने वाली सीपी नामक जीव के शव ही तो हैं, जब मेरे श्रवणरंध्रों में तुम्हारा वेणुरव, तुम्हारी मधुस्यन्दिनी गिरा ही प्रवेश नहीं कर पाती तो इन श्रवणेन्द्रियरूप विषम गह्वरों को तप्त तैल से सम्पूरित कर देना ही तो उचित है । तुम्हारे अधर-सुधा-सिक्त प्रसाद से शून्य पदार्थों से तृप्त होती मेरी जिह्वा, मात्र प्रेत भोजन से ही तो इस उदर कुण्ड को भरती है। तुम्हारे जैसे अप्रतिम नील कल्पतरु के आश्रय से हीन मेरा जीवन सत्य ही दारुण नरकों की भट्टी में तपाने योग्य है । ये सब शुक, सारिका, भृंग, कीट, पशु, द्रुम, लताएँ ही मुझसे तो श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर हैं । अहा ! यदि मैं सारिका ही हो जाती और वन-वन डोलकर तुम्हारी मुखश्री देखती रहती तो भी कितना अच्छा होता ? यह सारिका सचमुच ही धन्य है जो निरन्तर इधर-उधर फुदकती यावद्दिवा-निशा **'साँवर, साँवर, नीलमणि, नीलमणि'** रटती रहती है। इसकी वाणी प्रिय के नामस्मरण से क्षणार्द्ध के लिये भी विरत नहीं होती । यह न तो अन्य भाषण जानती है, न ही अन्य कुछ भी देखना-सुनना । इसके नेत्र सदा ही अर्द्धनिमीलित रहते हैं । क्योंकि वे प्रियतम श्यामसुन्दर की छवि से भरे छलकते रहते हैं । अहो ! सारिके, तू धन्य है ! तू सचमुच ही धन्य है।"

रानी **"अहो सारिके तू धन्य है, तू सचमुच धन्य है"** रटती-रटती बाह्यज्ञानरहित हो जाती है । वे गहन प्रेमसमाधि में प्रवेश कर जाती हैं । उसी समय एक विलक्षण घटित होता है । रानी की उन्मुक्त-वेणी, बिखरी घुँघराली श्यामल केशराशि से एक सारिका प्रकट हो जाती है । वह रानी के सम्मुख ही एक स्वर्ण चौकी पर आसीन हो जाती है । वह विस्फारित नेत्रों से रानी की स्तुति करने लगती है :-

"धन्य ! धन्य !! हे महाभागवत विलक्षण-दैन्य-सुभूषित-मूर्ति प्रियतमे वृषभानुतनये, तुम्हारी चरणरज को कोटि-कोटिशः वंदन । हे महाभाव जीवने! तुम्हें पुनः पुनः अनन्तशः नमन ।" यह कहती हुई वह रानी की चरणधूलि को अपने सम्पूर्ण अंगों में अपने पंखों से उछाल-उछाल कर डालती है । फिर अतिशय सुमधुर सरस वाणी में बोल उठती है :-

"मेरी प्राणेश्वरी ! मैं तो तुम्हारी ही रोमावली से प्रकटी तुम्हारी ही मानसस्परुपभूता हूँ । अत: ढूँढने जा रही हूँ, तुम्हारे पीत कलेवर के ग्राहक को । अवश्यमेव वह होगा यहीं कहीं अवगुण्ठित । अपनी प्राणप्रिया के भावामृत का पान-लोलुप - वह कहीं सुदूर प्रस्थान कर ही नहीं सकता ।

"प्रिये ! जैसी विलक्षण भावमयी तुम हो, वैसा ही अप्रतिम रसराज वह तुम्हारा प्रियतम भी है । अवश्यमेव वह भी यहीं कहीं किसी एकान्त कुञ्ज कुटीर में दैन्योक्तियों से अपने चित्त का प्रेमामृत अपसारित कर रहा होगा। तुम्हारी चरणरज की वन्दना करता वह भी अवश्यमेव अपने को दीन, नगण्य, मलिनता का पुञ्ज अनुभव करता हुआ तुम्हारी असमोर्ध्व करुणा की भिक्षा माँग रहा होगा । अपने को असहाय सर्वदोषों की प्रतिमा समझता हुआ वह मुझे अवश्य यहीं-कहीं तेरे आर्श्व-पार्श्व में ही उपलब्ध होगा, मैं उसे ही लेने जा रही हूँ और तेरे सम्मुख उपस्थित कर दे रही हूँ, उसे सम्हालना और अपने प्राणों में बसा लेना । मैं तो तुम दोनों की ही चरणदासी हूँ, तुम्हारे दुलारभरे संरक्षण की आकांक्षिणी हूँ । अपनी चरण कञ्ज-किंजल्क-कणिका से निरवधि अभिषिक्त करती रहना मुझे ।"

यह कहती वह सारिका रानी की स्मृति को हृदय में बसायें, रानी की परिक्रमा कर सुदूर वन में उड़ गयी। यह सारिका कौन है ? पहचानते हो ? यही हैं परम पू० गुरुदेव - श्रीराधाबाबा जो पूज्यों के सर्वपूज्य श्रीपोद्धार महाराज की चरण-रज-कणिका की कृपा पाकर कैसे विलक्षण सौभाग्य का वरण कर चुके हैं । उनका हृदय-देश अतिमनोरम प्रीति-संसार के दृश्य देखता हुआ महाभावजन्य आवर्तों के स्पंदन में निरन्तर धड़कता रहता है । धन्य ! धन्य !! धन्य !!!

सखी चन्द्रावली के कुञ्ज में

सारिका के रूप में प० पू० गुरुदेव उड़ते जा रहे हैं। कहाँ जायेंगे अन्तत:। जीव-समुदाय की अन्तिम गति नन्दनन्दन ही तो हैं। पू० गुरुदेव सारिका के रूप में उड़ते हुए विचार करते जा रहे हैं। उन्हें प्रियतम नन्दनन्दन के लीला-विलास की आड़ में दो वस्तुओं के दर्शन हो रहे हैं। सारिका बने वे, व्रजराजकुमार के असमोर्ध्व ऐश्वर्य एवं माधुर्य में झूलने लगते

हैं -" एक ओर तो आप सर्वकारण कारण हों; पर साथ ही उसी समय इस व्रजवृन्दावन में आप मेरी प्राणप्यारी किशोरीरानी के प्राणवल्लभ भी हो। आप सर्वथा सर्वविकार रहित हो; पूर्णतया सच्चिदानन्द विग्रह हो आप। परन्तु ओह ! विरह की वेदना से अभिभूत होकर क्रन्दन करते हुए किस प्रकार दीन हुए आप अपनी प्राणप्रिया की पावन चरणरेणु के याचक भी हो उठते हो।"

"यह भी सत्य है, प्रपंञ्च के दोषों की गन्ध भी आप में नहीं है। परम विशुद्ध हो आप ! फिर भी निजप्रिया के तनिक से मान में आप इतने काम-व्यथा से पीड़ित हो उठते हो, और चरम दैन्यावेश को ग्रहण कर लेते हो कि यदि कोई आपकों साधारण जीव मान ले इसमें आश्चर्य ही क्या है। एक किशोर युवक की ही तरह जागतिक प्रणयभाव के अनुरूप ही आप सदा अपने लीला विलास का विस्तार करते रहते हो। जागतिक भावों के स्रोत से ही संगमित आपकी लीला-मन्दाकिनी निरन्तर प्रसरित होती रहती है। यद्यपि यह जागतिक स्थिति भी है अप्राकृत ही। आपका स्वरूप, ऐश्वर्य, माधुर्य, लीला-विलास सभी अचिंत्य एवं अतर्क्य है प्रियतम। आपको मन-बुद्धि के द्वारा कोई कुछ भी जान ले, यह सर्वथा असंभव है। आपका नित्य प्रत्यक्ष दर्शन पा लेने पर भी मेरी चक्षु आदि इन्द्रियों के लिये आप सदा अगोचर ही बने रहते हैं।"

इस प्रकार विचार करती सारिका विशाल तपनतनया के तट पर पहुँच जाती है। अहा ! कालिन्दी का कर्पूर-धूलि-पटल सदृश कैसा निर्मल तट प्रदेश है। इन दोनों तटों के मध्य कैसी गंभीर धारा में कालिन्दी बह रही है। सारिका दोनों तटों के किनारे-किनारे उड़ती चली जा रही है। और लो ! सारिका पहुँच गयी सखी चन्द्रावली के कुंज में।

नव-नव शोभा धारण करने वाले, अत्यन्त रहस्यपूर्ण इस कुंज का कहना ही क्या है , जिधर दृष्टि जाती है, उधर ही शोभा की राशि बिखर रही है। सारिका सोच रही है कवि की कल्पना आज सत्य ही हो गयी है। कवि की अभिव्यंजना का काल्पनिक रूप आज यहाँ प्रत्यक्ष मूर्त्त है। कवि जब कभी शुक-पिक आदि कलकण्ठ वन-विहंगमों की काकली सुन पाता है तो उसे कल्पना राज्य में अनुभूति होती है, यह काकली नहीं यह तो संगीत की स्वरलहरी है। उसके नेत्र मन्द समीर-संचालित लता-वल्लरियों के स्पन्दन को नृत्य के रूप में ही अनुभव करते हैं। मेघ के समागम से पृथ्वी पर उठी हुई अंकुर राशि को देखकर कवि को यह भान होता है कि ये अंकुर नहीं, यह तो

हर्षवश धरासुन्दरी को रोमाञ्च होने लग गया है। अपनी इस अनुभूति को वह काव्य में गुम्फित कर देता है। परन्तु उसकी यह अनुभूति सार्वजनीन नहीं हो पाती। जन-साधारण के लिये विहंगम-काकली, लता-स्पन्दन, भूमि का अंकुरोद्गम - सभी ज्यों के त्यों बने रहते हैं। किसी को इनमें गान, नृत्य एवं रोमाञ्च का अनुभव कदापि नहीं होता। कवि की कल्पनाएँ कागद पर मात्र मसिचित्र ही बनकर रह जाती हैं- ये सत्य बनकर प्रकट नहीं होतीं। किन्तु कदाचित् किसी के नेत्र प्राकृत जगत से ऊपर उठ जाते, वाग्वादिनी भी कमलयोनि द्वारा सृष्ट जगत को भूलकर कहीं नित्य चिन्मय वृन्दावन को देखने लग जाती, इस समय सारिका के साथ इस चन्द्रावली कुंज के दर्शन कर लेती, और वीणधारिणी के नेत्रों में नेत्र मिलाकर कवि भी, और उसके साथ ही साधारण पाठक, श्रोता भी कहीं इस चन्द्रावली कुञ्ज के एक भूखण्ड को ही देख पाते, तो वे सभी यही कहते कि यह कवि की कल्पना नहीं सत्य का मात्र एक क्षुद्र अंश ही है।

यहाँ इस चन्द्रावली कुंज में विहंगमों की काकली, काकली नहीं रही है। यथार्थतः ही वह संगीत की मधुर रागिणी ही बन गयी है। आज तरु शाखाओं से लिपटी लता-वल्लरियाँ पवन-संचरित होकर स्पन्दित हो रही हों - यह बात नहीं, अपितु वे प्रियतम प्राणवल्लभ को पाकर उनके दर्शन से समुल्लसित हुई सचमुच ही नृत्य कर रही हैं। भूमि पर अंकुर राशि उग आयी हो, सो बात नहीं, सत्य, सत्य ही वृन्दा कानन को धारण करने वाली धरा की अधिष्ठातृ श्रीकृष्णचन्द्र के चरण-स्पर्श से रोमाञ्चित ही हो रही हैं। ये गायन, नर्तन, पुलकोद्गम कवि की कल्पना नहीं काव्यशास्त्र के रूपक, अलंकार भर नहीं, ये तो चिदानन्द-परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचन्द्र के वृन्दावन में पदार्पण से व्यक्त होने वाले स्वाभाविक परम सत्य परिणाम हैं। प्राकृत नेत्र, मन इन्हें भले ही नहीं देख सकें इनका अनुभव नही कर पावें किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र के कृपा-कण से पूत हुए दिव्यशक्ति विशिष्ट नेत्रों के लिये तो ये नित्य सत्य हैं।

यह चन्द्रावली कुंजस्थली सचमुच ही इस समय एक अभिनव गान, नृत्य, एवं पुलकोद्गम आदि अगणित आनन्द अनुभावों से परिपूर्ण हो गयी है। अरण्य का अणु-अणु अपने में न समाते हुए आनन्द को विभिन्न अनुभावों से व्यक्त कर रहा है।

तो इस चन्द्रावली कुंज में क्या प्राणवल्लभ भी हैं ? सारिका मन-ही-मन जिज्ञासा करती है। सारिका को जिज्ञासातुर पाकर एक हरिणी अपने नेत्रों के कोण से संकेत कर देती है । लो, ये रहे प्राणजीवन नन्दतनूज। प्राणवल्लभ अपनी प्राणप्रिया चन्द्रावली को उसके ही कुंज के एक-से-एक सुन्दर स्थानों का दर्शन करा रहे हैं। देखों ! इनके दक्षिण भाग में सटी-सटी चन्द्रवली कैसी शोभाशालिनी बनी फब रही हैं ? मानों इस निकुंज के अधिपति वे ही हों, उनका ही वह कुंज हो, इस प्रकार यहाँ के अण-अणु से प्रियतम अपना परिचय प्रकट कर रहे हैं। प्रियतम अपनी प्रिया चन्द्रावली के दक्षिण स्कंध को छूते हुए नव-नव निकुंजस्थली की ओर, लता-पल्लव जाल से आवृत सुरम्य वनस्थली की ओर संकेत करके ले जाते हैं एवं उसे यहाँ वहाँ सूक्ष्मता से सभी स्थानों की शोभा दिखलाते हुए अतिशय हर्षित हो रहे हैं। दल के दल मयूर, मृग, अपनी भंगिमा से शुभ शकुन की सूचना देते हुए प्रियतम के सम्मुख आते हैं, ललक भरे नेत्रों से उनकी ओर देखते हैं, कुछ क्षण ठगे-से देखते ही रह जाते हैं, फिर अपने दूसरे सहजनों को सूचना देने, मानो चौकड़ी भरते, नृत्य करते सघन वन की ओट में छिप जाते हैं।

लो ! चन्द्रवली की परिचारिकाएँ आ गयीं। ये प्रियतम को पुष्पकुंज में ले जाना चाहती हैं। अहा, क्या ही सुन्दर पुष्पकुंज निर्माण किया गया है सम्पूर्ण कुञ्ज ही चम्पा, चमेली, बेला एवं मोगरा पुष्पों से ही बना है। अहा, मध्य-मध्य में नीलकमल, रक्तपद्म, पीत सरसिजों को अतिशय कलात्मकता से विजड़ित कर इस कुंज को अभिनव सुन्दर सज्जित किया गया है। अहा ! इस पुष्पकुंज के मध्य कैसी मनोहर पद्म शय्या है। लो ! नीलमणि प्राणाराम आते ही इस पद्मपर्यंक में विराजित हो गये। इनके चरणप्रान्त में आसीन हो गयी चन्द्रावली।

सारिका अपने बैठने के उपयुक्त स्थान की खोज में पुष्पकुंज की एक परिक्रमा करती है। अन्ततः उसे एक गवाक्षिका उपयुक्त समझ में आती है और वह चुपचाप अपने नेत्रों को नचाती-घुमाती, सब कुछ देखती, वहाँ निस्पन्द बैठ जाती है। गवाक्षिका खुली है और वहाँ से पुष्पकुंज के भीतर का सब दृश्य उसे दिखाई पड़ता है। सारिका के कान इतने संवेदनशील हैं कि शब्द चाहे कितनी ही मन्द ध्वनि से बोले जावें, उसे सुनाई पड़ ही जाते हैं।

परिचारिकाओं के अनुरोध से बाध्य होकर, शैव्यादि सखियों की मनुहार से द्रवित होकर प्रियतम चन्द्रावली के सहित इस पुष्पकुंज में आ तो गये परन्तु, उनकी दृष्टि एवं मन तो बार-बार जा रहा है - गिरि गोवर्धन के चरणप्रान्त में जानेवाले तरु-लता-मण्डित सुरम्य पथ की ओर ही। गिरि गोवर्धन को देखकर उन्हें उसके सुन्दर परिसर में स्थित अपनी प्रिया के नामधारी कुंड की स्मृति हो आती है और तब अपनी अति सरल, मुग्धा प्रिया की स्मृति में वे डूब ही जाते हैं। परम तीव्र गतिशील मृगशावक की तरह उनका चंचल मन उस अतिशय आकर्षक भूधर परिसर में जाकर वहाँ रम जाता है।

प्रिया राधा की स्मृति में तल्लीनता एवं विरह-क्रन्दन

अरे भाई ! प्राणवल्लभ नीलसुन्दर तो अपनी प्रिया के कुंडों की स्मृति में ऐसे रम गये कि मानों किसी योगी ने समाधि ही लगा ली हो। देखो, देखो, कैसी स्थिर दृष्टि कर ली है उनके नयनों ने। श्वास-प्रश्वास कितनी मन्दगति सें चल रहा है। सखी चन्द्रावली के तो प्राण ही सूख गये हैं। हाय, हाय ! उसकी अति सुन्दर विकसित पद्म के समान मुख शोभा को तो मानों खग्रास -ग्रहण ही लग गया हो। शैव्या प्रियतम के उपचार में रत है। लो, प्रियतम दीर्घ निश्वास छोड़ने लगे। उनके नेत्र भी अश्रु-मोचन करने लगे। चलो, समाधि शिथिल तो हुई। उस समय तो ऐसा भय उपस्थित हो गया था कहीं यह समाधि महासमाधि में परिवर्तित नहीं हो जाय। खुली गवाक्षिका से दृश्य देखती, एकबार तो सारिका भी ललिता रानी को सूचित करने को उद्यत हो उठी थी।

"अरे ! अरे ! प्राणवल्लभ तो करुण रुदन करने लगे। क्या हो गया है इन्हें। इनके नेत्रों से अश्रुका प्रवाह बह चला है।" सारिका के हृदय के लिये यह पीड़ा असह्य होती जा रही है। उसकी बुद्धि का संतुलन नष्ट हो रहा है। सँभलने की शक्ति ही उसमें नहीं रह पा रही है। उसका तो सर्वस्व समर्पित है - मात्र प्रियतम के लिये।

इधर चन्द्रावली, शैव्या आदि सखियाँ भी परम विकल हैं। प्रियतम सुख ही तो इन सबकी भी साध है। इनकी सब चेष्टाएँ हैं तो मात्र प्रिय-सुख के ही लिये। इनके धन हैं केवल प्रियतम, इनका तन है मात्र प्रियतम-सुख

-सेवा-सामग्री। इनके कुञ्ज, श्रृंगार, प्रसाधन, इनका हास-विलास, इन्द्रिय-सुख के लिये तो सर्वथा-सर्वथा नहीं है। प्रियतम के सर्वाधिक सुख-दान के उपकरण मात्र ही तो हैं ये सब। इनमें तो अन्य कोई भी इच्छा नहीं, वासना नहीं, स्वसुख की कोई रुचि नहीं, कोई कल्पना हीं नहीं - फिर निज अभिलाषा का तो प्रश्न ही नहीं उठता। उनकी भीतिभरी आँखें लगी हैं प्रियतम के अति विषादपूर्ण मुख की ओर। आखिर इन्हें हो क्या गया है? अभी-अभी तो ये परम प्रसन्न एवं आनन्दित थे। हँसत-मुसकाते ही तो कुंजभवन के पुष्पमन्दिर में प्रवेश किया था, इन्होंने। कितने उल्लसित थे, जब सर्वत्र भ्रमण करते हुए वनदर्शन कर रहे थे। अचानक ही इनके नेत्र निमीलित हुए, तब स्पन्दहीन और शान्त हो गये थे।

कुञ्ज के पशु-मृग-मृगी, आदि भी प्रियतम की करुण-क्रन्दन ध्वनि सुनकर एकत्रित हो गये। विहंगमों के समूह ने भी कलरव करना स्थगित कर, वृक्षों पर अपना आसन जमा लिया, फुदकना भी उनका कुछ काल के लिये तो विरमित ही हो गया है। मानों कुंज के सभी स्थावर-जंगम जीवों के उल्लास और आनन्द का अवसान ही हो गया हो।

सारिका अपने प्राणवल्लभ की अति वेदना-भरी वाणी सुन रही है। उसका हृदय फट नहीं पड़ता, शेष कुछ भी बचा नहीं है। प्राणों ने सम्पूर्ण शरीर से चेतना हटा ली है। समस्त चेतना सिमटकर कर्णेन्द्रियों में आगयी है। कुछ थोड़ी चेतना नेत्रेन्द्रियों में केन्द्रित है, जिससे नीलसुन्दर - उसके प्रियतम का वेदनाभरा मुख दिखाई पड़ता रहे। सारिका के श्रवण अपने प्रियतम की वाणी सुन रहे हैं-

"प्राणेश्वरी ! मेरे प्राणों की प्राण ! मेरी जीवन सर्वस्व !! तुम कहाँ हो ? हाय ! मुझे छोड़कर क्यों एवं कहाँ चली गयी हो तुम? अरी ललिते ! ओह विशाखे !! हे चित्रे !!! अहो चम्पकलते !!!! अरी गुण, ओ रंग, अहो रूप, रति, अशोक !!!!! कोई उपाय करो, मेरी प्राणों की रानी राधा को शीघ्रातिशीघ्र मुझसे मिलाओ। मैं निरवधि तुम्हारा ऋणी, दास, सेवक रहूँगा।"

"रे शुक ! अहो सारिके !! हे कोकिल !!! तुम ही उठो, जाओ, मेरी रानी को मेरी विरह दशा सूचित करो, उसे शीघ्रतापूर्वक यहाँ ले आओ। यदि वह नहीं आवे तो मेरे प्राणों को इस तन से पृथक् कर उसके पार्श्व में पहुँचा दो। हाय ! कैसी विषम भयावह पीड़ा मेरे प्राणों को मथ रही है। अहो प्राणेश्वरी, तुम कहाँ हो ?" प्रियतम इतना करुण प्रलाप कर रहे हैं कि उनकी

वाणी से हाहाकार का रव निःसृत होकर बाह्य परिवेश को भी विकल कर रहा है। उनके नेत्रों से अनर्गल अश्रु-प्रवाह विसर्जित हो रहा है।

इधर सखी चन्द्रावली में शान्ति का लेश भी नहीं रहा है। वे बाहर से भीतर, भीतर से बाहर आती-जाती कभी शैब्या, कभी किसी अन्य सखी को पुकारती हैं। वे महिष-श्रृंग के वर्ण के समान काली पड़ गयी हैं। सहस्रों राकाशशि की आभावाला उनका मुख सर्वथा निस्तेज हो गया है। कृष्णगतप्राणा, कृष्णाविष्टहृदया चन्द्रावली परमाकुल हैं। उनमें तो सदा प्रणयसिन्धु ही उद्वेलित होता रहता है। पारावारविहीन प्रणयसागर में ही, उसकी उत्ताल लहरियों में ही वे अब तक अवगाहन करती रहीं हैं। अपना सर्वस्व न्यौछावर करते हुए अपने प्राणप्रियतम की सुख कामना करती रहना ही तो उनका जीवन है। एक साथ दुःख, ग्लानि, प्रेमहीनता, शोक आदि भावों के भार से अभिभूत हुईं वे प्रकृतिस्थ रह सकें यह कैसे संभव है ?

वे अपने प्रियतम-प्राणवल्लभ को धैर्य दिलाने, उनका चित्त अपने रूप, सौन्दर्य और प्रेम से आकृष्ट करने का अनवरत प्रयत्न करने पर भी इस समय सर्वथा असफल ही हो रही हैं। सभी साखियाँ प्रियतम की ऐसी विकल दशा देखकर अतिशय व्यग्र हो उठी हैं।

"हाय रे विधाता ! तू कितना क्रूर है। हमारे प्राणनाथ को यह क्या व्यथा इस सुख अवसर पर हो गयी ? सचमुच ही विक्षिप्त चित्त हो उठे हैं ये। चिन्ता का तार बँध गया है सबके मन में। सबके नेत्र अश्रु से भीगे हैं।

परन्तु प्राणमोहन के कर्णपुटों में तो किसी का कोई स्वर प्रवेश ही नहीं कर पा रहा है। वे तो अविराम 'राधा-राधा-राधा' की रट लगाये हुए हैं। उन्हें तो इस समय यही प्रतीत हो रहा है जैसे उनके वस्त्र, आभूषण, उनका मुकुट, हार सभी मात्र श्रीराधारानी ही हैं। वे ही उनके अंग अंग में सजी हैं। राधारानी ही कर्त्ता हैं और वे ही उनके कर्म हैं। राधारानी ही उनकी तन-मन-धन सब कुछ हैं और वे ही उनकी मात्र धर्म हैं। रानी ही उनकी श्वास-प्रश्वास एवं प्राण हैं। रानी ही उनकी मन हैं, मन के सम्पूर्ण मनोरथ हैं, रानी ही उनकी भूत, भविष्य एवं वर्त्तमान की परम एवं चरम वांछित विभूति हैं। वे ही उनका लोक-परलोक हैं, वे ही उनकी अन्तिम एवं परम गति हैं।

चित्रपट दर्शन से विरह शान्ति

लो, चन्द्रावली सखि के संकेत से धनिष्ठा दौड़कर किशोरीरानी का चित्रपट उठा लाती हैं। चन्द्रावली सखी बरसते नेत्रों से रानी के चित्र को प्रणाम करती हैं, हृदय से लगाती हैं और उस चित्र को प्रियतम-प्राणवल्लभ नीलसुन्दर के सम्मुख, उनके नेत्रों के समक्ष कर देती हैं।

अहा ! उस चित्र के नेत्रों के सम्मुख होते ही प्रियतम कैसे आनन्द-विह्वल हो उठते हैं। विरहानल से संतप्त प्राणप्रियतम की सम्पूर्ण इन्द्रियाँ समवेत हुईं समुदित शशधर की रूपसुधा का पान करने नेत्रद्वारों में एकत्रित हो जाती हैं; मानो प्रेमिल चातक नवघन को सहसा सम्मुख पाकर हर्ष-स्तम्भित हो उठा हो। अहा ! प्रियतम आनन्दनिमग्न हो जाते हैं। परम सुखद, अतिशय शीतल, शंतम, सौन्दर्य-सुधासिन्धु में प्राणवल्लभ अवगाहन करने लगते हैं। उनके अवगाहन की कल्पना तो वही महाभाग्यवान कर सकता है जिसके नयनों में, सौभाग्यवश कभी वह अचिन्त्य रूपसुधोदधि उच्छलित हो उठा हो। प्रियतम-प्राणवल्लभ प्राणरमण के तन-मन की सम्पूर्ण ज्वाला पलक पड़ते-न-पड़ते प्रशमित हो जाती है -- उनकी असह्य, अथाह विरह वेदना, सदा सदा के लिये जैसे विलीन ही हो गयी हो। मूर्त्त प्रेमानन्दस्वरूपा, प्रिया राधारानी के मात्र चित्रपट का ही संस्पर्श पाकर उनके हृत्तल का अनुरागसिन्धु अनन्त, अपरिसीम, ऊर्मियों से परिपूरित हो उठता है। जैसे उनकी सम्पूर्ण साध पूरी हो गयी हो। वे अतिशय आतुरता से उस चित्रपट को अपने हाथों में ले लेते हैं एवं उसे अपने उरस्थल से सटा लेते हैं। दो चार पल बीतते न बीतते उनके होठों से मधुर स्वर निःसृत होने लगता है- "प्राणों की रानी ! तुम अहर्निश यों ही मेरे हृत्तल में निवास करती रहना। प्राणसंजीवनी हे ! कभी क्षणभर भी मेरा परित्याग करके मत जाना। मुझसे कभी पृथक् मत होना भला।"

विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देख रहीं हैं, चन्द्रावली एवं उनकी सहचरियाँ, शैब्या, धनिष्ठादि-प्रियतम के प्रिया-प्रेम को। उनके उरस्थल में ग्लानि का घटाटोप तमस् छा जाता है; सभी प्रिया राधारानी के सम्मुख अपने प्रेम-प्यार को सर्वथा तुच्छ हेय अनुभव करने लगती हैं। सभी मन ही मन अपने को धिक्कृत करने लगती हैं।

लो, क्षण बीतते-न-बीतते नीलचन्द्रदेव, प्राणरमण प्रकृतिस्थ हो गये। अपने कपोलों पर बहती मृदुलारुण नयनों की प्रेमाश्रुजलधारा का मार्जन किया उन्होंने अपने पीत दुकूल से।

चन्द्रावली एवं शैब्यादि उनकी प्राणसखियाँ भी बिलखती उनके चरणों में आ गिरीं। आत्यन्तिक औदास्य की छाया सुव्यक्त थी उन सबके मुखमंडलों पर।

आश्वासन-दान

लो, परम रसज्ञ, रसिकशेखर, रसविद् प्रियतम-प्राणवल्लभ का अब तो व्यावहारिक ज्ञान भी क्रियाशील हो उठा। यथाकाल, यथापरिस्थिति उन्होंने अपनी प्रियाओं को अपने निराविल स्नेह का दान भी कराया। आश्वासन-दान में कोई भी त्रुटि नहीं रही। मृदुल हास्य का पुट देकर वे कहने लगे -- "अरी मेरी प्राणप्रिया चन्द्रावली ! मैं तुम्हें सदा अपने नेत्रों में ही बसाये रखता हूँ। तुम मेरी अप्रतिम सुन्दर निधि हो। इस व्रजमंडल में तुम्हारे समान रूपवती अन्य कोई भी युवती नहीं है। परन्तु इस रहस्य को मैं अन्य किसी के भी सम्मुख प्रकट करना नहीं चाहता। किसी अनमोल वस्तु के स्वामित्व को प्रकट करना भयप्रद होता है री ! उसके छिन जाने की संभावना हो जाती है। इसीलिये तुम्हारे प्रति मेरे प्रेम की, मैं किसी को गन्ध भी नहीं लगने दूँ - ऐसी मेरी प्राणों की लालसा मुझमें नित्य भरी रहती है। परन्तु मेरी प्यारी चन्द्रावली, तुम सदा ही विश्वस्त रहना तुम मेरे हृद्देश में नित्य विराजित थीं विराजित हो एवं सदा ही एकछत्र विराजित रहोगी।"

"अरी मेरी प्राणप्रिया चन्द्रावली ! मैं तुम्हारा ही प्राणनाथ हूँ। तुम सभी तनिक भी संकोच मत करना री ! चिन्ता का सर्वथा परित्याग कर देना। देखो ! मैं एक दिवा-स्वप्न देखने लगा था। यह सब व्याकुलता उस दिवा-स्वप्न का ही परिणाम थी और उस क्षण मुझे शरीर की सुधि भी नहीं रही थी। देख री ! इस पुष्पकुंज-मन्दिर में प्रवेश करते ही एक अभिनव रस-महासमुद्र में मेरी बुद्धि का अध्यवसाय ही निमज्जित हो गया। तेरे मुखचन्द्र के सौन्दर्य ने मेरे चित्त को बरबस उसमें डुबो दिया फिर तो मेरी सम्पूर्ण अहंता ही डूब गयी -- विश्वविमोहन तेरे राका-शशधर-मुख की निर्मल शीतल चन्द्रिका में।"

"क्योंकि तेरा परम प्रेममय नाम तो मेरे हृदय मन्दिर से, उसके परम सुगुप्ततम कोषागार से - प्रेम-कपाटों के विजड़ित रहने के कारण - बाहर आ नहीं पाया, अत: मैं तुझे ही 'राधा-राधा' कहता पुकार रहा था। सत्य ही चन्द्रावली ! मेरे नयनों की श्याम पुतलियाँ राधा के अणु-अणु में तेरी अनिंद्य सुन्दर रूप-राशि ही भरी देखती हैं। वे कहीं भी, किसी में भी तेरे सिवा अन्य किसी भी वस्तु को देख सकें ऐसी स्थिति उनकी रही ही नहीं। केवल तेरा ही त्रिभुवनमोहन रूप प्रतिबिम्बित रहता है वहाँ।"

"प्यारी चन्द्रावली ! मेरे जीवन का क्या रूप हो गया है री ! कैसी दशा कर दी है तेरे प्रेम ने मेरी, क्या बताऊँ ? तूने मेरे श्रवणपुटों में अपनी मनोहारिणी गिरा भर दी है। तेरे अधरों से नि:सृत स्वर की झंकृति के अतिरिक्त, मैं अन्य कुछ सुन ही नहीं पाता।"

"मेरे नासारन्ध्रों में सदा तेरे श्रीअंगों का सौरभ ही परिव्याप्त रहता है; अन्य समस्त सौरभ सारहीन हो गये हैं ! परिणाम यह होता है कि तेरी सन्निधि में मैं सचमुच विवेक खो बैठता हूँ। और तेरे प्रेम की अनमोल निधि को सुगुप्त रखने की चेष्टा में व्याकुल हुआ 'राधा-राधा' पुकार कर उठता हूँ। तुम भली प्रकार जानती हो कि यह सब तभी होता है जब मुझे शरीर की सुधि नहीं रहती है। तुम विश्वास करना, भला। मैं तुम्हारी अपनी से अपनी वस्तु हूँ। मैं तुम्हारा प्राणनाथ हूँ और तुम सभी मेरी प्राणप्रियतमा हो।"

इस प्रकार प्रियतम नीलमणि किञ्चित् कपट सत्य का प्रयोग करते हुए शैव्या, धनिष्ठादि सभी सखियों को आश्वस्त करने की चेष्टा करते हैं। परन्तु उनके इस चतुर वाग्जाल का प्रभाव क्या चन्द्रावली आदि साखियों के हृदय में पड़ता है ? कदापि नहीं।

शैव्या द्वारा प्रिया राधारानी के प्रेम-दर्शन का आग्रह

और शैब्या तो प्रियतम नीलमणि से प्रश्न ही कर उठती है- "यह अकाटय अखण्ड सत्य है कि प्राणवल्लभ, तुम प्राणप्रिया राधा से ही सर्वाधिक स्नेह करते हो। उनके प्रेम की तुलना में हम सभी भानु के सम्मुख खद्योत की तरह सर्वथा नगण्य, तुच्छ ही हैं। हम उनकी अतिशय प्रेमगरिमा से सचमुच सत्यांश में अभिभूत हैं। निश्चय ही वे तुम्हें अतिशय सुखदायिनी हैं, तभी न तुम्हारा उनके प्रति ऐसा असमोर्ध्व अनुराग है। परन्तु प्राणवल्लभ,

तुम्हारे प्रति उनके सर्वत्यागमय प्रेम के हमें दर्शन तो कराओ, एक झाँकी तो उनके प्रेम-स्वरूप की हमें भी हो, जिससे उस महा-महात्यागमय प्रेम को हम सभी अपने जीवन में उतारने की चेष्टा तो करें। उनके उस रस-महासमुद्र में अवगाहन तो हमारा प्रारब्ध नहीं ही है, हम मात्र उसके दर्शन तो प्राप्त कर सकें, उसकी एक निर्मल झाँकी तो हमें मिलसके, जिसके फलस्वरूप तुम उसके इतने वशवर्त्ती हो रहे हो।"

और, प्राणवल्लभ क्या उत्तर दें -- वे मात्र मुसका उठते हैं।

अपनी प्रिया चन्द्रावली की ग्लानि और उसके चित्त में जड़ीभूत हुए विषाद को दूर करने के लिये वे निर्णय कर लेते हैं कि कुछ दिवस वे अपनी प्रिया से मिलेंगे नहीं। यद्यपि उन्हें इस अभिनीत आचरण से असीम प्राणान्तक कष्ट होगा, परन्तु असमोर्ध्व प्रेमी स्वभाव जो है, उनका।

विलक्षण है प्रियतम-प्राणवल्लभ का प्रेम स्वभाव। अपनी प्रियाओं की घनीभूत प्रेमप्रतिमा ही तो वे हैं। अपनी प्रियतमाओं की नित्य-नवीन-सुख-सामग्री बने रहने की लालसा ही उनके हृत्तल को प्रतिक्षण आलोड़ित किये रहती है। उनका चित्त चञ्चल रहता है अपनी प्रियाओं के सुखसम्पादन में ही। अपनी प्रिया चन्द्रावली को सुखानुभूति हो जाय और उसका यह सुखानुभव प्रियतम प्राणसुन्दर के लिये अनन्त दुःख का सृजन कर रहा हो, तो उस परिस्थिति में भी उस दुःख को हँसते-हँसते वरण कर लेना प्राणवल्लभ का नित्य स्वभाव है। वह दुःख उन्हें परम सुखमय अनुभूत होता है, उस अपार दुःखोदधि में वे चिरन्तन अप्रतिम सुख का अनुभव करते हैं। स्वसुखवाञ्छा की कलुषित छाया उनके मानस में क्षणांश के लिये भी कभी प्रवेश नहीं कर पाती। काम की सामर्थ्य ही कहाँ जो उन्हें संस्पर्श कर सके। मन्मथमथन जो वे ठहरे। मनोज दूर खड़ा भले ही अपना हतभाग्य समझता रहे। त्याग का बाह्याडंबर नहीं है, उनमें। उन की प्रिया यदि उन्हें सुखोपभोग की, विलास की, रति की असंख्य सामग्रियाँ समर्पित करे, और उन्हें सुखी करना चाहें, उनके सुख से स्वयं सुखी हो तो वह सुख उन्हें सहर्ष स्वीकार है। उनकी तो नासा-समीर ही है -- प्रिया-सुखेच्छा। प्रिय सुख-सम्पादन की अभिलाषा ही उनके प्राणों की सत्ता हैं।

बस, प्रियतम नीलसुन्दर इस चन्द्रावली कुंज को ही अपना सुगुप्त आवास बना लेते हैं।

इधर, प्रिया किशोरीरानी की क्या दशा है, देखें ! जब उन्हें सारिका छोड़कर आयी थी उस समय तो वे विलक्षण महाभावगत दैन्य में अभिभूत थीं। अब उनकी क्या स्थिति है ? सारिका को अपनी प्रिया की चिन्ता हो जाती है। वह अपने को चन्द्रावली कुंज में निहित नहीं रख पा रही है। उसके पंख पुनः उड़ चलते है। और वह दूसरे ही क्षण अपने आपको राधाकुण्ड स्थित सर्वसौभाग्यप्रद कुंज में पाती है।

रानी अपने महल के पीछे की वाटिका में एक कक्ष में लेटी हैं। उनके मुख से ही नहीं, रोम रोम से अनवरत 'कृष्ण-कृष्ण' नाम की ध्वनि हो रही है। वे विचार कर रही हैं - न जाने कौन - से ऐसे कारण हो गये हैं कि उन्हें विगत तीन दिवसों से प्राणरमण दर्शन ही नहीं दे रहे हैं।

रानी की विरह दशा एवं शैब्यादासी होकर रहने का संकल्प

रानी पाक-रचनार्थ नन्दभवन भी नित्य जा रही हैं, परन्तु वहाँ भी उन्हें प्रियतम की झलक नहीं मिली। दर्शन तो दूर, वहाँ उन्हें उनकी भोजन करते समय सखाओं के संग की सख्यवार्त्ता भी सुनने को नहीं मिली ! प्रतिदिन तो वे प्रसाद-निर्माणशाला के पार्श्व में ही स्थित भोजनकक्ष में भोजन करते थे, परन्तु अब न जाने क्यों उन्होंने नियम ही बना लिया है कि वे अपनी माता यशोदा के कक्ष में ही भोजन करते हैं। पूर्वतया रानी विश्रामकक्ष में विश्रामकाल में उनके आरसी में दर्शन कर लेती थी परन्तु अब तो वे अपनी माता यशोदा के ही कक्ष में भोजन कर, वहीं विश्राम भी कर लेते हैं, अतः अब तो यह आरसी-दर्शन भी सुदुर्लभ हो गया है।

अपने प्रियतम की छबि-दर्शन के अभाव में आज तो रानी का हृदय धैर्य ही त्याग दे रहा है। उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा है मानो वे श्याममुखकमल देखे बिना अब तो क्षणार्द्ध भी जीवित नहीं रह पावेंगीं। उनका एक-एक पल युगों के समान व्यतीत हो रहा है। उनके मुख से जो अनवरत 'कृष्ण-कृष्ण' नामोच्चारण हो रहा है, इसी के सहारे ही उनके प्राण शरीर-त्याग नहीं कर रहे हैं। अन्यथा तो, वे प्राण कभी के ही उनके शरीर का परित्याग कर प्रियतमानुसंधान में चले जाते; उनसे मिलकर तद्रूप ही हो जाते।

अहा ! कृष्ण-नाम की पीयूषधारा ने ही रानी को विरहव्याल के विष से बचा रखा है। अतिशय विलक्षण है, यह पीयूषधारा। यह, बस किसी भी

प्रकार से -- भाव, कुभाव, आलस्यवश ही सही, एक बार जिह्वा पर तनिक-सी लग जाये, फिर तो मायाजन्य जड़ता नष्ट होकर ही रहती है। आत्मस्वरूप की स्मृति हो जाती है एवं तब एक और विलक्षण संघटित होता है। यह आत्मस्वरूपता की ज्ञप्ति पर्यवसित हो जाती है -- महामरकत-श्यामल-ज्योत्स्ना के दर्शन में, तत्पश्चात् वह श्यामल-ज्योत्स्ना एक अभिनव सुन्दर साकारविग्रह रूप ग्रहण कर लेती है। वह ऐसा विलक्षण रूप सौन्दर्य होता है -- जिसके दर्शनमात्र से दृश्यप्रपंच की सम्पूर्ण मायिक सत्ता बीजसहित विलुप्त हो जाती है। इस मयूर-पिच्छ-परिशोभित मुखाकृति की छटा माया नटी का सम्पूर्ण नाट्यकौशल ही अस्तित्वविहीन कर देती है। फिर यह त्रिभुवनमोहन श्यामाकृति अपने अरुणिम अधर-पल्लवों पर मन्द मुसकान की स्फुट रेखा व्यक्त कर देती है। बस, फिर तो वह महाभाग्यवान् द्रष्टा एक ही अनाविल कामना से जाज्वल्यमान स्फुल्लिंग की तरह धधकने लगता है।

"ओह ! प्राणाधिक कुछ नहीं चाहिये, मुझे। बस ! मात्र तुम मेरे हृदयमन्दिर में नित्य विराजित रहना।"

इस अनाविल हास्य के दर्शन कर लेने पर द्रष्टा अपना सर्वस्व खो बैठता है, सर्वथा निमग्न हो जाता है साक्षात् उसका मन वृन्दाकानन ही बन जाता है।

और तब वंशीरव से उसके हृदेश का अणु-अणु निनादित हो उठता है। द्रष्टा को स्पष्ट भान होता है कि नीलसुन्दर उस अमृत-निनाद में उसका ही नाम ले-लेकर उसे ही पुकार रहे हैं। बस, तब तो वह श्रोता उस रव के पीछे तत्क्षण ही चल पड़ता है, चल पड़ती है। जिस अवस्था में जहाँ था वहीं से उसके चरण निर्बाध दौड़ पड़ते हैं -- उस मुरली ध्वनि की दिशा की ओर ही। उसे अपने तनकी स्मृति नहीं रहती, मन कहाँ है, क्या हुआ मन का, कौन बतावे ? सच्चिन्मयी नील-ज्योति के साथ, नील मयंकदेव के साथ तादात्म्य हो जाता है उसके मन का। बस, यही कहा जा सकता है।

तो रानी ने भी अपने प्राणरमण के दर्शन के अभाव में इसी अमोघ रक्षाकवच 'कृष्ण' नाम का ही आश्रय लिया। और इस 'कृष्ण' नाम ने उनके विरह-व्याकुल हृदय में अपने प्रियतम की जीवन्त भावमूर्ति खड़ी कर दी है। वे मन-ही-मन अपने प्रियतम को अपने सम्मुख देखती हुई अपने हृदय की व्यथा उनके ही सम्मुख व्यक्त करने लगती हैं।

"प्राण हे ! तुम तो मेरे हृदय के प्रेममन्दिर में ही नित्य निवास करते हो। अतः तुमसे तो मेरा कुछ भी अप्रकट नहीं है। तुम मेरे जीवन के जीवन हो। तुम मुझसे पृथक् होकर किसी भी रमणी के पास जाओ, रहो,- बस सुखी रहो, यही तो मेरे उर के अन्तरतम की एकान्त कामना है। अतः प्राण, तुम जहाँ भी हो, सुखी हो, मात्र बस यह संवाद तो मुझे दे दो। मेरे उरस्थल में तुम्हारे वियोग की धू-धू कर भीषण अग्नि प्रज्वलित है। मेरी इस आग की ज्वाला को कोई बिना अनुभव किये भला कैसे जान सकता है ? मेरी ये भीषण विरहाग्नि शान्त हो, इस कामना से मैं तुमको कुछ भी प्रतिबद्ध नहीं करती, तुम्हारे सुख में किन्चिमात्र भी मैं व्यवधान नहीं डालना चाहती। मैं तो यही चाहती हूँ कि मुझे मात्र यह संवाद प्राप्त हो जाय कि तुम जहाँ हो, वहाँ पूर्णतया सुखी हो।"

और लो, सारिका ने ललिता के सम्मुख प्रियतम का चन्द्रावली कुंज में होने का समस्त संवाद दे दिया। प्रियतम चन्द्रावली के प्रति अपना एकांगी प्रेम प्रकट कर रहे हैं, यह भी उसने ललिता को सुना दिया।

और ललिता यह सब संवाद सारिका के मुख से सुनकर अति कुपित हो उठी है। उसने प्रिया की सब दशा लिखकर एक पत्र देकर सारिका को पुनः चन्द्रावली कुंज में भेजा है। परन्तु प्रियतम ने वह ललिता का पत्र पढ़ा ही नहीं है। बिना पढ़े ही सारिका को वह पत्र लौटा दिया है। उन्होंने सारिका को कुछ भी संकेत नहीं किया कि वे कब प्रिया के पास उनके कुंज में आ रहे हैं। उन्होंने प्रिया के प्रति अपना अनुराग भी प्रकट नहीं किया। सारिका प्रियतम के इस उदासीन व्यवहार से अत्यंत क्षुब्ध लौट आयी है। अतिशय व्यथित है, वह। सारिका प्रिया के सम्मुख संकोचवश जा ही नहीं पा रही है।

एकान्त में ललिता के सम्मुख उसका कलेजा हाहाकार करता फूट पड़ता है। ललिता सारिका को किसी प्रकार समझा-बुझाकर प्रिया के पास भेजती है। और प्रिया, जैसे सभी घटना का उन्हें ज्यों का त्यों पूर्वज्ञान हो अत्यंत भावावेश से उसे अपने अंक में भर लेती हैं। वे अपना समग्रप्रेम सारिका पर न्यौछावर कर देती हैं। अति भावावेश में वे सारिका से वार्त्ता करने लगती हैं -- "क्यों दुखी होती हो बहिन ? प्रियतम ने मेरा तिरस्कार कर दिया उन्होंने मेरे प्रीतिसंवाद को भी निरादृत किया, तुमसे अति नीरस व्यवहार किया, बस, इसीलिये न तुम दुखी हो। वे सुखी हैं, न ! मैं इतना ही

जानना चाहती थी। तुम्हें पत्र सहित भेजने का इतना ही तो मेरा प्रयोजन था। मुझे विस्मृत कर वे परम सुखी हैं, यही संवाद मैं चाहती थी। अब मेरा कार्य तो तू कर ही आयी।"

अपनी प्राणसखी के ऐसे निर्मल एकांगी प्रेम को देखकर सारिका का प्रियतम पर प्रणयकोप और अधिक बढ़ जाता है। परन्तु प्रिया को बाह्य ज्ञान कहाँ ? वे तो बोलती ही जाती हैं- "सद्गुणनिधि ! तुम ही तो मेरी अमूल्य विभूति हो। मेरी एकमेव सम्पदा हो। मेरे हृदय का पवित्रतम सुख तुम ही हो। तुम ही मेरे सब सम्मान हो। तुम स्वतंत्र रहो, स्वाधीन रहो, अपनी रुचि का निस्संकोच जीवन विहरो। मेरी रुचि-अरुचि का सर्वथा ध्यान नहीं रखकर, पूर्ण स्वतंत्र आचरण करो। यही तो मेरा सर्वाधिक सत्कार है, नाथ। तुम मुझसे शंकित होओ, संकोच करो, पराधीन होओ यह भला मैं कैसे चाहूँगी ? जिसे चाहो उसे भोगो, जहाँ रुचि हो वहाँ जाओ, जैसे रुचि हो पूर्ण स्वच्छन्दता से विलसो। तुम्हारी प्रसन्नता ही मेरा संपूर्ण मनोरथ है। नाथ ! तुम मेरे कभी मत रहो; बस मैं तुम्हारी ही सदा रहूँ, यही वरदान दे दो। हे मेरे प्राणरत्न ! तुम सुखी रहो, तुम स्वच्छन्द-स्वतंत्र रहो, मात्र मेरी यही अभिलाषा है।" प्रिया के नेत्र झर-झर बरसने लगे। वे बाह्य-ज्ञान-शून्य हो गयीं।

रानी की दशा अति विचित्र है। उन्होंने विगत तीन दिवसों से अन्नजल भी नहीं ग्रहण किया है। प्रियतम-स्मृति की अतिशय प्रगाढ़ता में वे निरन्तर डूबी रहती हैं। अविरत प्रगाढ़ भाव में रहने से तन की नित्यक्रिया-स्नानादि का भी ध्यान उन्हें नहीं रहता। ललिता, गुणमंजरी आदि अन्य सखियों की सहायता से किसी तरह तन पर जल डालकर स्नान सम्पन्न करा देती हैं। अपनी प्राणसखी के स्वयं अंगुली डालकर दाँत माँजती हैं, और वस्त्र बदल देती हैं। देशका, कुलका, कालका, लोकका, शास्त्रका कुछ भी ज्ञान नहीं हैं-उन्हें। लोक-लज्जा बनी नहीं रह पाती है। सम्मुख गुरुजन हैं, कि बालक हैं, वे किसी को भी पहचानती नहीं। उनके सम्मुख तो सदा अखण्ड एक ही श्यामल छबि विद्यमान रहती है।

नीलसुन्दर परमाह्लाद में भरे अपने सौन्दर्यपूर की किरणें सर्वत्र बिखेरते हुए वृन्दाकानन में भ्रमण कर रहे हैं। अनन्त पारावारविहीन रसोदधि उछल रहा है। ऐसी प्रतीति हो रही है, मानो घनी श्याम-अम्बुदराशि रस-वर्षा करती धरा को पल्लवित करती जा रही है। आनन्द-अनुराग के आवर्त उनके

रोम-रोम से उत्थित हो रहे हैं। उनकी रसमत्तता, उनके नयनों की गति, उनकें अंग-संस्थानों का स्पन्दन -- ओह ! कैसा प्राणोन्मादी है। इन रसदानी का यह रस-वितरण-अभिनव विमोहन का जाल सर्वत्र विस्तारित कर रहा है। उनसे एकान्तिक भाव से जुड़े हुए, अपने प्राणों का उनसे ही तादात्म्य स्थापित किये हुए विहंगम श्रेणी में, चतुष्पाद समूह में, तरु-वल्लरियों में, ह्रदों में, कासारों में, कल्लोलिनी में उनके अन्तस्तल में प्रवाहित रस की धारा का प्रपात हो रहा है। अतएव एक अननुभूत आनन्दजन्य जड़िमा व्यक्त हो गयी है, इन सबमें।

वृन्दाकानन की वसुधा तो अपने आप में नित्य पुलकित है ही। इस समय उसमें परम प्रियतम नीलमणि के चरण संलालन से एक अभिनव कम्पन का सृजन हो गया है। अहा ! तृणावली कैसी उन्मत्त सी नाच रही है। दल के दल मयूर हंसादि विविधि विहंगम आकर बार बार घेर लेते हैं प्रियतम को। कुछ क्षण पंख प्रसारित कर कल कलरव से वन प्रदेश को मुखरित करते हैं फिर चञ्चु से चञ्चु संलग्न कर थिरक उठते हैं। कुरंगी-कुरंग नयनों में नील सुन्दर की छटा भरकर नयन निमीलित कर लेते हैं। देखो, देखो ! उन्मत्त हुए से वे एक दूसरी पर अपनी ग्रीवा को झुलाकर यंत्रचालित से कभी दाहिनी ओर, कभी बांयी ओर, दोलित हो रहे हैं। अन्य चतुष्पादों में भी ऐसी ही सुख मत्तता व्यक्त हो रही है। तरुशाखाएँ, तरुवल्लरियाँ झूम रही हैं, और ह्रद सरोवर फेनिल होकर अपने अपने कूल की तृण राशि को आर्द्र कर रहे हैं। नील कल्लोलिनी क्षण-क्षण में नव-नव आवर्त्तों का निर्माण कर रही है। लावण्य की शतसहस्र उर्मियों का विस्तार करते हुए प्रियतम नील सुन्दर रस क्रीड़ा में उत्तरोत्तर विभोर होते जा रहे हैं।

रानी इस चिद्विलास में आपाततः डूबी हूई हैं। उनकी प्रियतम-रति वेगपूर्वक सब दिशाओं में बिना ओर-छोर के प्रवाहित हो रही है। अपने चित्त के नित्य अभिवर्द्धनशील चाव में वे निर्बाध मिल रहीं हैं, अपने प्राण-सार सर्वस्व से। वे सर्वथा-सर्वांश में निरपेक्ष हैं। प्रियतम चाहे राधा नाम्नी किसी गोपी को भले ही जानें-पहचानें भी नहीं।

यद्यपि सखियाँ अपनी ओर से प्रियतम से विनय पर विनय करती हैं, पत्र पर पत्र भेजकर प्रिया का संवाद उनतक पहुँचाती हैं, परन्तु कोई पत्र खोलकर देखे तब। प्रियतम के इतने उपेक्षापूर्ण विपरीत व्यवहार का रानी को जैसे कुछ ज्ञान ही नहीं। इस विपरीताचरण-जनित प्रतिकूलता की एक रेखा

भी रानी के मानस पर अंकित नहीं हो पाती। वे तो अपने भाव में निर्बाध मिल रही हैं अपने प्राण-सार-सर्वस्व से। उनके चित्त का नित नूतन चाव क्षण-क्षण असीम वेग से अभिवर्द्धित ही होता जा रहा है।

प्रिया ललिता को सम्बोधित कर भावावेश में ही बोल पड़ती हैं -- "क्यों कठोर हो रही हो बहिन ! तुम क्या चाहती हो ? प्राणवल्लभ नीलसुन्दर से मैं मान करूँ ? रसिकशेखर को शिक्षा दूँ ? क्या अपराध है उनका ? अपनी रुचि का आचरण करना, चन्द्रावली के कुंज में स्वाधीनतापूर्वक कुछ काल रह जाना, यही अपराध है न उनका ? बोल मेरी बहन, ललिता बोल ? उनको अपने पराधीन बनाकर रखना, फिर मान करके भयग्रस्त करना, यही क्या प्रेम है ? वे मेरे मन की ही करते रहें, अपने मन की कुछ भी स्वाधीनतापूर्वक नहीं करें ऐसी बाध्यता उन पर थोपना क्या प्रेम है ? क्या देखा है सारिका ने ? "वे चन्द्रावली को अपनी एकमेव प्रियतमा कह रहे थे, शैब्या के हाथों मधु पी रहे थे; पुष्पमन्दिर में चन्द्रावली के साथ एक शय्या में आसीन थे। तो इसमें क्रोध करने की बात ही क्या है? बहन ! उन्होंने स्वच्छन्द सुखाचरण किया, यह सुनकर तो मेरा हृदय सुख-समुद्र में डूब गया। ललिता री ! आज मैं जितनी सुखी हूँ, उतनी तो जीवनपर्यन्त कभी नहीं हुई। मेरा रोम-रोम आनन्द से नृत्य कर रहा है। इतने दिवसों में प्रियतम-प्राणवल्लभ के स्वच्छंद सुखाचरण का सुसंवाद मुझे आज मिला है। मेरे आनन्द की सीमा नहीं है।"

"ललिते ! मुझे रोकना मत। मैं शैब्या की दासी बनने, उसके कुञ्ज में जा रहीं हूँ। वहाँ मैं अपने प्रियतम का मोहन मुख अपने नेत्रों से देख तो पाऊँगी। अरी, मेरा अपयश ही तो होगा। शैब्यादासी होने से मेरी राजनन्दिनी की मर्यादा नष्ट हो जायगी। मैं चन्द्रावली-सेविका ही सही। मेरा मान-सम्मान अभिमान ही तो नष्ट होगा ? मैने अपनी प्रीति तो विनष्ट नहीं की। वे ही वे मेरे पास सदा आवें, क्या यही प्रीति-मर्यादा है। आज यदि बिना निमंत्रण के ही मैं उनके पास चली गयी तो अपने प्राणपति के चरणों में ही तो जा रही हूँ। मैं दासी-जीवन का क्लेश भोग लूँगी अपने प्राणवल्लभ का सुख-सदन मुख निहारकर अपने प्राणों को तो सुखी कर लूँगी। मेरा अहंकार चूर-चूर हो जायेगा, मुझसे शैब्या दासीवत् कार्य करायेगी, मैं उसकी पान-पीकदानी स्वच्छ करूँगी, उसकी सेज सँवारूँगी; ऐसा भी संभव है, वह मुझे अपने कुञ्ज में प्रवेश ही नहीं करने दे, तो भी मैं उसके चरणों में गिर

पड़ूँगी। उनका सुख एवं आनन्दभरा मुख मात्र एक बार ही सही, देख तो पाऊँगी।"

और सचमुच ही प्रिया शैब्या के कुंज की ओर चल पड़ती हैं। प्रिया उन्मादिनी हो गयी हैं। सखियाँ चीत्कार करतीं उनके पीछे दौड़ रहीं हैं। प्रिया को न ही तन की सुधि है और न ही वसन की। उनके नयन अपलक स्थिर हैं। सिर के केश बिखरे हैं। उन्हें बाह्य ज्ञान ही नहीं है। वे, हा, प्राणनिकेत!! कहती दौड़ी जा रही हैं। उनको सँभालने उनके पीछे ललितादि सखियाँ चली आ रही हैं। प्रिया की गति इतनी तीव्र है कि सखियाँ प्रिया के साथ चल ही नहीं पातीं।

प्रिया मन ही मन मन्द स्वर में बोले जा रही है - "प्राणवल्लभ राग ही राग करें, वैराग्य करने का उनका कोई अधिकार ही नहीं है ? प्रियतम मुझसे मिले ही मिले रहें, उन्हें मुझे त्यागने का अधिकार ही नहीं है क्या नहीं, नहीं, वे पूर्ण स्वाधीन हैं। उनको मैं अपनें पराधीन रखकर कैसे सुखी रह पाऊँगी ? उनके प्राण किसी अन्य से सुख पाने को तरसते रहें और वे मात्र प्रतिबद्धता से मेरे पास बने रहें, इसमें मुझे कौनसा सुख है ? उनके प्राणों को जहाँ भी, जिसमें भी सुख है, वे वहीं जायें, वहीं रहें। मैं तो उनके सुख से पूरी सुखी हूँ। मेरा अपना स्वयं का क्या मान और क्या अपमान ? प्रियतम ही मेरे सभी मान सम्मान हैं; और वे पुकार उठती हैं -- "हा प्राणनिकेत ! हे प्राणवल्लभ !! हा ज़ीवन सर्वस्व !!! हे गुणनिधि ! हे मधुर ! हे मोहन ! हे स्पर्शमणि ! हे राधाधन ! हे सुखार्णव ! हे परमाह्लाद।" वे चन्द्रावली कुंज के द्वार पर पहुँच कर भावसमाधि में सुधि-बुधिहीन हुईं भूलुंठित गिर पड़ती हैं।

रानी का चन्द्रावली, शैब्या एवं प्रियतम से मिलाप

और चन्द्रावली कुंज के द्वार पर ही प्रियतम, प्रिया का स्वागत करने खड़े मिलते हैं। चन्द्रावली और शैब्या दोनों ही स्वागत में दौड़ती हुई रानी के चरणों में गिर पड़ती हैं। उनके नयनों से बहते अश्रु थम ही नहीं पाते। धारा की तरह उनके नेत्र अश्रु प्रवाहित कर रहे हैं। चन्द्रावली की हिचकी बँध गयी है। रानी उसे अपने वक्षस्थल में कसकर आलिंगन कर लेती हैं

मानो रानी और चन्द्रावली प्रियतमप्रेम से भरी दो देह किन्तु मात्र एक प्राण हों।

"सब कुछ मेरा अपराध है, बहिन; सब मेरा अपराध है। मैं तुम्हारे प्रियतमप्रेम की अगाधता देखना चाहती थी। चलो बहिन, कुंज में चलो। मेरा कुंज तुम्हारी चरण-धूलि से पवित्र हो गया। तुम्हें देखकर मेरे कुंज का पत्र-पत्र उसकी भूमि का कण-कण, विशुद्ध एवं सच्ची प्रीति से सिक्त हो जायेगा।"

"तुम प्रीति की साक्षात् प्रतिमा हो। मैं तो तुम्हारी दासी की भी दासी होने के योग्य नहीं।" यह कहती शैब्या, ललितादि सभी सखियों को अपने कुञ्ज भवन में ले चलती हैं। किन्तु प्रिया तो इस आदर-भक्ति से सर्वथा निरपेक्ष हैं। वे तो अपने नीलमणि प्राणरमण का सुख-निकेत मुख देखकर अपने स्वरूपगत भाव-समुद्र में डूब गयी हैं। उन्हें तो सर्वत्र कुंज में, कुंज के पत्र-पत्र में, ललिता में, शैब्या में, चन्द्रावली में, सखियों में, सर्वत्र सभी में उसके प्राणनाथ ही भरे दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

और प्रियतमप्राणसुन्दर नीलमणि की कैसी विलक्षण दशा है ? वे तो अपनी प्रिया के मुखचन्द्र की पिंगलद्युति निहारकर सर्वथा विह्वल हो रहे हैं। उनके ह्रत्तल में अनुराग का सागर अथाह हिलोरें ले रहा है। शरच्चन्द्र को भी हेय बना देने वाले अपने प्रिया के सुन्दर मुखाविन्द पर दृष्टि पड़ते न पड़ते व्रजराजकिशोर की विचित्र-सी दशा हो जाती है, अपनी प्रिया के प्रेमामृतवर्षी चित्ताकर्षक मुख के जादू ने नीलसुन्दर के नील-कलेवर में अष्ट सात्विक विकारों का उन्मेष कर दिया है। मधुरस्मित-विभूषित अधरों से दीप्तिमान् नील-कलेवर रोमाञ्चित हो उठा है।

रोमाञ्च के अन्तराल से सुस्पष्ट परिलक्षित होता है कि प्रियतम नीलमणि की हृदय रसधारा गंभीर, गंभीरतर होती जा रही है। चपल-लोचनों की बंकिम चितवन अपलक निहार रही है - अपनी प्रिया को। वे उस अप्रतिम अनिंद्य सौन्दर्य की साकार प्रतिमा के सम्मुख ठिठककर अविचलित खड़े हैं। नेत्रों से अनर्गल वारि-धारा प्रसरित हो रही है। आनन्दातिरेक से छलके इन वारि-बिन्दुओं में अद्भुत शैत्य अभिव्यक्त हो रहा है। उनके चतुर्दिक् आनन्दानुभव का प्रवाह प्रवहमान है। नेत्रों के कज्जल से मिश्रित यह अश्रु-प्रवाह उनके दीप्त अरुणिम कपोलों को आर्द्र कर दे रहा है। किसी भी

प्रकार रुद्ध ही नहीं हो रहा है - यह प्रवाह। उनका कण्ठ रुद्ध हो गया है। वाणी निस्सृत नहीं हो पा रही है; सर्वथा विह्वल हैं, वे।

अपनी प्राणाधिका किशोरी की अनुपम प्रीतिराशि पर नित्य-विमुग्ध नीलसुन्दर के प्राणों में आज तो एक अभिनव उद्दाम भावोच्छलन हो रहा है। वे अपनी प्राणाधिका किशोरी से याचना में दीन हुए अपनी अभिलाषा रखने को समुत्सुक हैं। यद्यपि किशोरीरानी के लिये अपने प्रियतम को कुछ भी अदेय नहीं है,परन्तु फिर भी अभिलाषाभरी मधुस्यन्दी गिरा - अपनी बाह्य अभिव्यक्ति इस रूप में कर ही उठती है।

"प्राणप्रियतमे ! तुम ही तो मेरे शतसहस्र प्राणों की अधिदेवी हो, मेरे असंख्य प्राणों की प्रतिष्ठा हो। जीवनेश्वरि ! अपनी हेतुरहित कृपा का प्रकाश कर मुझे भी एक वस्तु का दान दे दो - चिर-अभिलाषा सँजोये मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। मेरे उद्विग्न प्राणों की लालसा यही है, इतनी ही है-- "मेरे नयन अपलक विजड़ित रहें केवल, केवल,केवल तुम्हारे मुख पर। वे निरवधि मात्र तुम्हें निहारतें रहें। मेरे मन के कण-कण में, मेरे प्राणों के अणु-अणु, परमाणु-परमाणु में नित्य विराजित रहे तुम्हारा, बस, तुम्हारा ही, यह मुखचन्द्र। प्रेममयी ! अपरिसीम प्रीति का प्रवाह तुम्हारे इन अरुण लोचनों में सहज नित्य निरन्तर प्रसरित रहता है। उस प्रवाह की एक कणिकामात्र मुझे दान कर दो। बस, एवमस्तु कह दो मेरी प्राणप्रिये !"

चतुर्दिक् रस-समुद्र ही रस-समुद्र हिलोरें ले रहा है। एक लहर आती है, दूसरी उससे भी उच्चतर और तीसरी उससे भी और तीव्र एवं उद्दाम आती है।

सारिका बने, पू० गुरुदेव श्रीराधाबावा का सम्पूर्ण अंग-अंग स्वेद से श्लथ है। रतनगढ़ ग्राम में रेत के ऊँचे-ऊँचे पहाड़ नुमे धोरों के कारण तापमान सर्वाधिक न्यून रहता है। परन्तु पू० गुरुदेव इतनी शीत में भी स्वेद से लथ-पथ हैं, सारिका का अंग अंग रोमाञ्च से उत्फुल्ल हो गया है। रोमाञ्चवश उत्फुल्ल-पंख होने से उसकी आकृति कुक्कुट की तरह विशाल हो गयी है। वह भरे कण्ठ से गा रही है-

काले को लेकर मन मेरा हो गया निपट काला प्रियतम !
कुछ भी संकल्प करूँ, काला होकर वह निकलेगा प्रियतम !
वह असित रंग घन घनतर अब होगा क्रमशः आगे प्रियतम !
है अतः अनन्तकाल तक ही जीवित रहकर रोना प्रियतम !

सारिका प्रसंग : दूसरी लीला
नन्दभवन दर्शन

अभी ब्राह्म मुहुर्त हुआ नहीं है । सारिका उड़ रही है नन्दप्रासाद की ओर । लो, दिखाई पड़ गयी व्रजेन्द्रपुरी । सारिका स्पष्टतया अनुभव कर रही है कि उसकी प्रिया राधारानी की ही सखी - वृन्दा (संधिनी शक्ति) की ही नित्य परिणति है, यह । वृन्दारण्य के कुञ्ज, निकुञ्ज, गिरि, सरोवर एवं वन-उपवनों की तरह यह पुरी भी परम विभु, नित्य चिन्मय है । प्रिया-प्रियतम की चिदानन्दमयी लीला के प्रकाश के साथ ही यह पुरी भी आविर्भूत होती है और जब लीला का अन्तर्द्धान हो जाता है तो यह पुरी भी अन्तर्हित हो जाती है । हाँ, जिनके नेत्रों में प्रिया-प्रियतम की चरण-नख-चन्द्रिका भरी है, उनके लिये तो, यह पुरी अनादि, अनन्त निरवधिकाल सदा वर्त्तमान ही रहती है, वृन्दाकानन उनके नेत्रों में सदा भरा रहता है । किसी भी कवि की रसना में कहाँ ऐसी सामर्थ्य है कि इसके विचित्र वैभव के किसी एक अंश का भी चित्रण कर सके । सारिका, व्रजेन्द्रपुरी की अप्रतिम शोभा की स्तुति में बस, यही बोल पाती है :-

क्वचिन्मरकतस्थली कनकगुल्मवीरुद् द्रुमाः
क्वचित्कनकवीथिका मरकतस्य वल्ल्यादयः ।
क्वचित्कमलरागभूः स्फटिकगुल्मवीरुद्द्रुमाः
क्वचित्स्फटिकवाटिका कमलरागवल्ल्यादयः ।।
क्वचिन्मरकतद्रुमाः कनकवल्लिभिर्वेल्लिताः
क्वचित्कनकपादपा मरकतस्य वल्लीजुषः
क्वचित्स्फटिकभूरुहाःकमलराग वल्लीभृतो
द्रुमाः कमलरागजा : स्फटिकवल्लिभाजः क्वचित् ।।

कहीं तो मरकतमणिमय अकृत्रिम भूमि है । उस भूमि पर स्वर्णमय गुल्मलतायें एवं द्रुमसमूह परिशोभित हैं, कहीं स्वर्ण की गलियाँ, वीथियाँ बनी हैं । सर्वत्र स्वर्ण ही स्वर्ण आस्तृत है, मृत्तिका का लेश भी नहीं । और इस स्वर्णभूमि में मरकतमणिमय वल्लरियों की, गुल्मतरु पंक्तियों की छटा फैल रही

है । कहीं पद्मरागरचित भूमि है, उस पर स्फटिक-निर्मित गुल्मलता वृक्ष-समूह विराजित हैं और कहीं स्फटिक की वाटिका बनी है तो उसमें पद्मराग की लतायें, गुल्म तरुराजि झूम रही हैं ।

कहीं तो मरकत द्रुमसमूह कनकलताओं से परिव्याप्त हैं एवं कहीं स्वर्ण-पादपश्रेणी मरकत की बनी वल्लरियों से सुमण्डित हो रही है तथा कहीं वृक्षों की अवलि स्फटिक की है, जो पद्मराग मणि की लताओं से उद्भासित हो रही है; और कहीं स्फटिक के लताजाल से पद्मराग के वृक्ष समुज्ज्वल हो रहे हैं ।

यहाँ जितने वृक्ष हैं, सभी कल्पतरु हैं एवं जितनी वल्लरियाँ हैं सभी कल्पलतिकाएँ हैं । शाल, तमाल, ताल, अश्वत्थ, कपित्थ, बकुल, नारिकेल, रसाल, प्रियाल, श्रीफल, करील, कोविदार, देवदारु, मन्दार, जम्बीर, चन्दन, अशोक, कदम्ब, गुग्गुल, पीलू, गन्धपिप्पली, गजपिप्पली, आदि जितने वृक्ष हैं सभी कल्पपादप हैं । वासन्ती, वनमल्लिका, स्वर्णयूथी, जाती, यूथी, मल्लिका, मुद्गरा, अपराजिता, गुञ्जा, शतमूली, बिम्बफललता, लवंगलता आदि जितनी लतायें हैं, सभी कल्पवल्लरियाँ हैं । नन्दनकानन में कल्पपादप नहीं, उससे सर्वथा विलक्षण ! प्राकृत कल्पवल्लरियाँ नहीं, उससे सर्वथा भिन्न ! ये तो स्वयं भगवान् व्रजेन्द्र नन्दन के चिन्मय धाम के चिन्मय तत्व से गठित हैं ।

सारिका उड़ती हुई देख रही है - वृजेन्द्रपुरी के समान ही वैभवशालिनी यहाँ सभी गोपों की न जाने कितनी ही पुरियाँ हैं । वह आश्चर्यचकित विस्फारित नेत्रों देख रही है । यहाँ के कण-कण से एक परम दिव्य ज्योति झर रही है । ऐसी उज्ज्वल ज्योति, जो प्राकृत जगत के कोटि-कोटि सूर्यों में भी संभव नहीं है, परन्तु साथ ही ऐसी शीतल, सुखद जैसी प्रपंच के कोटि चन्द्रों की पुंजीभूत किरणों में भी नहीं । यहाँ भी एक सूर्य तो है, परन्तु प्राकृत विश्व का सूर्य नहीं । एक पीयूषवर्षी चन्द्र भी है, परन्तु वह प्राकृत चन्द्र नहीं । यहाँ भी सुनील गगन है; गगन में मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, केतु, राहु असंख्य तारक - रमणीय, परम तेजोमय, अत्यन्त विलक्षण, परम सुन्दर, शोभन, अतिशय सुषमाशाली - सब कुछ अप्राकृत चिन्मय हैं ।

सारिका इस व्रजेन्द्रपुरी की ओर-छोर विहीन महिमा को देखकर विस्फारित-नेत्र बस, - उड़ रही है, सर्वत्र फुदक-फुदक कर बैठ रही है और परमानन्द में डूबी है ।

सारिका यह भी स्पष्ट देख रही है कि जो कुछ श्रुतियों में उल्लिखित है -

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकः
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।।
तमेवभान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

वहाँ न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चन्द्र एवं न तारक समुदाय ही प्रकाशित होता है और न विद्युत् ही प्रकाश करती है । फिर, वहाँ अग्नि का प्रकाश तो संभव ही कहाँ है ? क्योंकि उसके नित्य प्रकाश से ही तो इन सूर्य चन्द्र आदि में प्रकाश का संचार होता है; उसके आंशिक प्रकाश को पाकर ही तो ये प्रकाशित होते हैं, सारा जगत भी उसी के क्षुद्रतम अंश से ही प्रकाशित हो रहा है ।

सारिका को स्पष्ट-स्पष्ट यह तत्व उजागर हो रहा है कि श्रुति-प्रतिपादित यह धाम और व्रजेन्द्रपुरी कोई दो पृथक् सत्ता नहीं हैं । परन्तु, फिर भी व्रजेन्द्रपुरी में यह श्रुति-प्रतिपादित तत्व ही सूर्य, चन्द्र, सभी नक्षत्र, साथ ही भूमि-भवन बना प्राकृत ग्रहों से सर्वथा भिन्न प्रकाशित हो रहा है ।

यह बात भी नहीं कि ऊपरवर्णित, वृक्ष, वल्लरी, भूमि, गृह, आदि वस्तुओं का कोई इत्थंभूत रूप है। इतना है, ऐसे है, ऐसे नहीं है - इस प्रकार इनके लिये कोई सीमा भी नहीं बाँधी जा सकती । जड़ वस्तु की तरह इनके रूप, रंग, आकार, प्रकार, स्थिति, गुण, चेष्टा भाव आदि की इयत्ता नहीं । ये तो प्रियतमप्राणवल्लभ नीलमणि की अचिन्त्य लीला महाशक्ति का निरन्तर अनुसरण करते हैं । प्रिया-प्रियतम की जब, जैसी लीला का प्रकाश होता है, उसके लिये जो, जैसी जितनी सामग्री चाहिये, उसी रूप में इनका प्रकाश यहाँ होता रहता है ।

सारिका व्रजेन्द्रपुरी के असंख्य रत्नों से खचित स्वर्ण-पत्तरों के आवरित शक्तिशाली काष्ठ के विशाल मुख्यद्वार के समीप आ गयी । अरे, कैसे सच्चिन्मय हैं ये ? सारिका को देखकर ये द्वार - इनको संभालने वाले दो चमचमाते नीलमणि के तुंगाकार स्तंभों के सहित - जीवन्तवत् प्यार से स्वागत में बोल उठे :- "आओ प्यारी सारिके ! तुम्हारा व्रजेन्द्रपुरीस्थित नन्दभवन स्वागत करता है । हे आकाशचारिणी ! यदि हम तुम्हें अनुमति न दें तो तुम

इस भवन में अपने पंखों के बल कदापि प्रवेश नहीं पा सकती; क्योंकि हमारी उत्तुंगता हम उस समय नभस्पर्शी कर सकते हैं, परन्तु तुम तो हमारे नन्दनन्दन की दुलारी हो, तुम्हारा स्वागत, प्यार भरा स्वागत !"

सारिका ने मानो इस प्राचीर और विशाल प्रवेशद्वारों की स्वागत वाणी सुनली हो उसने भी इनको मन ही मन प्रणाम किया । उसे अपनी भूल समझ में आ गयी थी, उसे पूर्वतः ही इनको पहले प्रणाम कर, तब भीतर प्रवेश की अनुमति माँगनी चाहिये थी ।

अहा ! कैसे भीमकाय विशाल स्वर्णावरित स्तंभ हैं । इनके स्वर्णपत्रों पर रत्नों की ही बेलें विजड़ित हैं और बेलों में रत्नों के वृहत् प्रस्फुटित पुष्प हैं । इन भीमकाय स्तंभों के नीचे सूँड उठाये दो विशाल गजराज हैं, मानो इन गजराज-द्वय की सूँडों पर ही यह पुरी का गजद्वार खड़ा हो । जिन रत्नों से इन गजराजों की आकृतियाँ निर्मित हैं, वे अतिशय रसमय प्रकाश प्रसरित करते हैं एवं इतनी जीवंतता व्यक्त कर रहे हैं जिससे स्पष्ट परिलक्षित होता है मानो आद्याशक्ति भगवती महालक्ष्मी के वाहन गज ही इस पुरी के द्वारदेश में स्थित हों ।

इन स्तंभों के ऊपर उलटा अर्द्ध-चन्द्राकार, रत्नजटित छत्र है जिसके मध्य में भगवान् गणाधिपति की सिन्दूरवर्णी प्रतिमा अंकित है। उसके दोनों ओर सूर्यदेव एवं चन्द्रदेव की दो रथ-चढ़ी प्रतिमाएँ हैं । इसी प्रस्तर खण्ड के सर्वोपरि शीर्ष में नीलमणि रत्न की शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज नारायण की विशाल, शान्त रसप्रसरित करती, अति सौम्य अर्द्ध-निमीलित-नेत्र प्रतिमा है । मूर्त्ति का मुख मन्द-मन्द हास्य से युक्त है एवं इतना आनन्दमय है मानो सभी आगन्तुकों को उपदेश दे रहा हो-**आनन्दोऽहं, आनन्दोऽहं**। नन्दभवन के चतुर्दिक् बहुत ही ऊँची स्वर्णिम दीवार है । मध्य में सुन्दर मजबूत खंभे हैं; प्रत्येक स्तंभ पर चतुष्पाद छतरियाँ हैं । मुख्य-मुख्य स्थानों पर षट्पाद एवं अष्टपाद छतरियाँ भी हैं । नन्दभवन के भीतर इस दीवार से लगे बहुत ही सुन्दर रत्नमय परिचारकों के आवास हैं ।

इन गोपालकों एवं परिचालकों के आवासों के आगे बहुत ही सुन्दर स्फटिकशिला निर्मित मार्ग है, जिसके दोनों ओर बहुत सुन्दर कदम्ब वृक्ष सुपुष्पित रहते हैं । इनकें विकसित पुष्पों की सुगन्ध से सारा नन्दभवन महकता रहता है । परिचारकों के आवासों के आगे मेंहदी की अति सुन्दर बाड़ है जिसमें मेंहदी को ही काटकर मयूर, हाथी, हरिण आदि जीवन्त

आकृतियाँ सृजित की गई हैं । मुख्यद्वार और नन्दमहल के मध्य बहुत ही गोलाकार सुन्दर उपवन है। इसके मध्य में रत्नमय फव्वारा लगा है । नन्दभवन के दोनों ओर सटी अति विशाल गोशालाएँ हैं । इनके आगे राजमार्ग है और पीछे यमुना के सुन्दर गौघाट हैं । नन्दभ्वन के पीछे यमुना बहती है । नन्दभवन पूर्वाभिमुख है । सुदूर पूर्व में गिरिराज का विशाल पर्वत है और इस पर्वत और नन्दभवन के मध्य गहन वन है । नन्दभवन के उत्तर में गोशाला से सटा संनन्द जी का ऐसा ही विशाल सुन्दर भवन है और दक्षिण में गोशाला से सटा इतना ही सुन्दर उपनन्दजी का भवन है । सभी भवनों के पार्श्व में ऐसी ही विशाल गोशालायें है तथा गोशालाओं के पार्श्व में गोपों के आवास हैं ।

यमुना उत्तर से दक्षिण की ओर बहती है । वह कुछ दूर दक्षिण में जाती है तब पूर्व की ओर मोड़ ले लेती है । फिर पूर्व की ओर, बहुत दूर तक बहती हुई पुनः दक्षिण में मुड़ जाती है । राजमार्ग भी इस प्रकार उत्तर से दक्षिण और तब पूर्व की ओर मुड़ जाता है । पूर्व से होता हुआ यह राजमार्ग आगे वन में पगडंडियों में परिवर्तित हो जाता है । वन आगे गहन, गहनतर होता हुआ अति गहन हो जाता है । अति गहन होता हुआ यह वन गिरिराज परिसर तक चला जाता है ।

नन्दभवन और सिंहद्वार के मध्य गोलाकार उपवन में इतने सुन्दर सुरभित पुष्प विकसित हैं कि उनकी महक सम्पूर्ण नन्दभवन को सुवासित कर रही है । यह बयार भी विलक्षण स्वभाव वाली है - जिधर श्री कृष्ण होते हैं बयार की दिशा उधर ही हो जाती है। मानो निरन्तर उनके ही चतुर्दिक् उनकी ही परिक्रमा करती वह प्रवहमान रहती हुई कभी किसी दिशा से उत्तमोत्तम पुष्प-गंध लाती है और कभी किसी दिशा से ।

सारिका गिरि परिसर से उड़ती हुई नन्दभवन पहुँची है । वह समग्र व्रजेन्द्रपुरी की परिक्रमा करती है । अहा ! नन्दभवन के पीछे भी अति सुखद उपवन है, जो यमुना घाट तक गया है । घाट भी अतिशय मनोरम हैं । सभी गोपावासों और गोशालाओं के पीछे अति सुखद उपवन हैं और तत्पश्चात् यमुना पर परम रमणीक स्वर्णिम रत्नों से खचित एक-से-एक मनोरम घाट हैं । यशोदादि गोपियाँ अपने भवनों के पिछवाड़े से इस विस्तृत उपवन के मध्य होती हुई इन घाटों पर स्नानार्थ जाती हैं । महाराज नन्दादि पुरुषों के लिये पृथक् घाट हैं और स्त्रियों के लिये पृथक् घाट हैं । वस्त्रादि बदलने के

लिये घाटों पर अलग-अलग कक्ष बने हैं । घाटों पर भी वृक्षों की घनी सुखद छाया रहती है तथा सुन्दर विकसित सुमनों से लदी हुई लताएँ, वल्लरियाँ इन घाटों के स्वर्ण खंभों को अपने आलिंगन में बाँधें रखती हैं । अत: घाट रत्नखचित स्वर्णिम शिलाओं से निर्मित होते हुए भी इन लताओं से और उनके पुष्पों से सदा लदे रहते हैं ।

अहा, यमुना की भी कैसी विलक्षण शोभा है ? अपने प्रियतम नन्दनन्दन के नेत्रों को सुख देने के लिये यमुना प्रतिपल नित नूतन अरविन्दों से अपने को सजाती है । आश्चर्य है कि अति गंभीर निर्मलतम जल से सदा भरी रहने पर भी वह पद्मों से पूर्णतया भरी रहती है । गहरे जल एवं फिर प्रवाह में तो पद्मों का होना और विकसित होना, असंभव-सा ही है। पद्मों के लिये तो पंक होना परम अनिवार्य है, परन्तु विरजा, जिसके जल में रज एवं पंक है ही नहीं, उसका शतदल सरोरुहों से परिव्याप्त रहना महती आश्चर्य ही तो है, किन्तु यहाँ तो चतुर्दिक् एक नहीं, असंख्य आश्चर्य ही आश्चर्य, विलक्षणताएँ ही विलक्षणताएँ सर्वत्र भरी हैं ।

यमुना के पश्चिमी किनारे पर भी सुन्दर घाटों की पंक्तियाँ हैं । स्थान-स्थान पर स्वर्णशिलाओं से बने घाटों पर रत्नमयी सीढ़ियाँ बनी हैं । सुन्दर चन्दन काष्ठ से निर्मित रत्नों से खचित नौकाएँ इन घाटों में पंक्तिबद्ध बँधी हैं, इनमें हलकी रत्नमयी पतवारें हैं । इन नावों से प्राय: गोप गोपियाँ यमुना संतरण कर यमुना पारवर्ती गाँवों की ओर जाती-आती हैं ।

तो लो, सारिका नन्दभवन पहुँच गयी है । सारिका भावदेह में गुरुदेव को नन्दमहल, वृषभानुमहल एवं सभी उपनन्द, संनन्द आदि प्रमुख गोपों के विलक्षण शोभामय भवनों का दर्शन हो रहा है । उनकी प्रसन्नता की सीमा ही नहीं है ।

"जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन" के भाव से भरे पू० गुरुदेव सारिका वेश में कभी नन्दभवन के सुन्दर-सुन्दर कँगूरों में बैठते हैं, कभी प्राचीरों पर एवं कभी उपवन के पुष्पित वृक्षों पर । अत्यन्त प्रसन्नता भरे वे फुदक-फुदक कर चहकते अपनी प्रसन्नता व्यक्त कर रहे हैं। राजमार्ग के दोनों ओर विकसित पुष्पों से लदे कदम्ब, अनार, बिल्वादि के वृक्ष हैं । ये सभी वृक्ष राजमार्ग को अलौकिक शोभा सम्पन्नता प्रदान कर रहे हैं ।

गोदोहन एवं यश गायन

सभी गोशालाएँ वृक्षों से लदी हैं । इनके मुख्यद्वार राजमार्ग में खुलते हैं। गौओं के लिये अति हवादार स्वच्छ आवास बने हैं, जिनमें गोप गौओं की सेवा में निरत हैं ।

रात्रि के तृतीय प्रहर से ही गोप गौओं की सेवा में संलग्न हो जाते हैं । ब्राह्ममुहूर्त्त में तो गोदोहन ही प्रारंभ हो जाता है । गोदोहन की अति सुमधुर ध्वनि से सम्पूर्ण नन्दग्राम गूँजने लगता है । गोदोहन करते गोपालक नन्दनन्दन की सुन्दर लीलाओं का गायन करते हैं ।

गोदोहन आरम्भ होते ही गोपालों में प्रेमावेश का आरंभ हो जाता है । आजतक यशोदानन्दन ने जितनी लीलाएँ की हैं, सबकी सब गोपालकों के एवं गोपियों के हृदय-मन्दिर में अंकित हैं । गोपालकों के स्मृतिपथ में ये लीलाएँ मानो अभी हो रही हों - इस प्रकार जीवन्त उदय होने लगती हैं । हृदय में रससिन्धु उमड़ने लगता है । सभी गोपालकों के मसृण चित्त में इतना स्थान कहाँ कि वे सभी लीलायें रुद्ध हो सकें । अतः उच्छलित होकर यह रसधारा गीत के रूप में गोपालकों के मुख से निस्सृत होने लगती हैं । दोहन की ध्वनि में मिले हुए कण्ठ से गोपालकों के गीतों में नीलमणि के विविध चरित्र जीवन्त चित्रित होते हैं । गोपालकों के हाथ तो अपने प्रियतम प्राणवल्लभ नीलसुन्दर के लिये दुग्ध-दोहन कर रहे हैं, मुख से नीलमणि प्राणजीवन की रसमयी लीलाओं का गायन हो रहा है और उन सबकी चित्तभूमि में इन विविध लीलाओं के अनुरूप क्षण-क्षण में नव-नव वेष से विभूषित हुए नीलमणि नृत्य कर रहे हैं । इस प्रकार सभी गोपालक, परिचारक, परिचारिकाएँ कायमनोवाक्य से श्रीकृष्णचन्द्र प्राणवल्लभ में तन्मय हो रही हैं । और यही दशा गौओं की है । वे भी दिवसपर्यन्त अपने प्राणसुन्दर को निहारती ही रही हैं, संध्या में भी उन्होंने तभी दोहन करवाया है जब नन्दतनय उनके सम्मुख नेत्रों में प्रत्यक्ष रहे हैं । निशापर्यन्त सभी गौओं ने अपने नीलसुन्दर के ही स्वप्न देखे हैं । और अब तक वे उन्हीं के दर्शन में इतनी तन्मय हैं कि उन्हें पता ही नहीं है कि कब निशा व्यतीत हो गयी है और ब्राह्ममुहूर्त्त का प्रभाती दुग्ध-दोहन होने जा रहा है । उनकी भावना में तो नीलमणि पर्यंक में सोने गये ही नहीं है, वे उनके ही दृष्टिपथ में उनके

चतुर्दिक् ही थे, हैं, एवं रहेंगे । उनकी भावना में तो रह-रहकर नीलमणि उनके सामने आ जाते हैं और वे अपनी मूकभाषा में उनसे वार्त्ता करती रहती हैं ।

"रे ! व्रजराजकुलके तिलक ! तूने एक से एक बढ़कर परम मनोहर, सन्दर पवित्र लीलाएँ की हैं । परन्तु ओह ! पशुयोनि-जीवधारी हम गौओं पर भी तुम्हारी कैसी कृपा है कि उन सभीको तुमनें हमारी ही साक्षी में सम्पन्न की हैं । तुम हमको लीलासुख देकर किस प्रकार कृतार्थ कर रहे हो, हम तुम्हारे इस हेतुरहित प्रेम का क्या कहकर सत्कार करें । "

"अहा ! शकट-भंजन, पूतना-उद्धार, तृणावर्त-उद्धार, मृद्भक्षण, माखन चोरी, ऊखल-बंधन, वंशीध्वनि की भुवनमोहिनी का विस्तार, वत्सासुर उद्धार, बकासुर-संहार, व्योमासुरवध, अघासुर-संहार, वन-भोजन, ब्रह्म-सम्मोहन लीला आदि समस्त लीलाओं में तुम्हारी जिस-जिस माधुरी का विकास हुआ है, वह सब असमोर्ध्व है ।

इधर गोपियाँ भी नन्दनन्दन की मधुर रिंगण, विविध क्रीड़न, नर्तन, गोवत्सपुच्छधारण, उनके नवनीतहरण, आदि लीलाओं का अपने गीत-गायन में सजीव चित्रण कर रही हैं ।

अहा ! गोप गोपियों के अंगों की शोभा भी देखने योग्य है । गोपों के कटिदेश में सुकोमल रेशम की फेंट कसी है । वे छोटे-छोटे रत्नों से जटित सुन्दर बगलबन्दी पहने हैं । सिर पर उनके पगड़ियाँ हैं । गोपियों के लहँगा, कंचुकी, और रंगबिरंगी ओढ़नियाँ हैं । सभी में स्वेद, कम्प, अश्रुप्रवाह, स्वरभंग आदि सात्विक विकार व्यक्त हो रहे हैं । गोपों के अंगों में भी रह रहकर प्रकम्पन हो उठता है। यही दशा गौओं की है । गोपियों के हाथों को अलंकृत करने वाले कंकण, एवं कानों को विभूषित करने वाले कुण्डल-युग्म चंचल हो रहे हैं । गोपियों के अंगों में निरन्तर गति रहने से अंचल सिर से उतर आया है, वेणी-बंधन शिथिल हो गया है, वेणी में ग्रथित मालती पुष्प झरने लगे हैं एवं झर-झर कर चरणों का संस्पर्श कर रहे हैं। सभी गोप एवं गोपियों के प्रेमावेश के कारण प्रस्वेदकण भाल पर, कपोलों पर चिबुक पर, झलमल कर रहे हैं। इन गोप-गोपियों का प्रेमावेश के कारण बाह्य ज्ञान लुप्तप्राय: है फिर भी अपने प्राणसार सर्वस्व नीलमणि को दुग्धपान कराने की वासना के चिर जाग्रत रहने से उनकी दुग्ध-दोहन क्रिया में कोई व्यतिक्रम नहीं है । इसी प्रकार गौएं भी - नीलमणि हमारा दुग्ध पान करेगा, इस

सुबलपत्नी कुन्दलता है । वह निशा में भी इन्हें सँभालने इस कक्ष में आ-जा सकती हैं । वे ही निशा में इनकी कुशलता का निरीक्षण करती हैं।

तो सारिका अपने प्राणवल्लभ को उनके शयनकक्ष में न पाकर पुनः तीव्रगति से यमुना की ओर उड़ चलती है। अहा ! पू० गुरुदेव के सारिकारूप में पंखों में मानो मनोगति आ गयी हो। वे अतिशय त्वरा से उड़ रहे हैं। भगवान नारायण का वाहन गरुड़ भी इस समय अनकी गति को स्पर्द्धा में विजित नहीं कर पावेगा । इतनी तीव्रगति से वे नन्दभवन के पिछवाड़े से उपवन को पारकर यमुना घाट पहुँचते है। वे यमुना में स्नान करते महाराज नन्दराय को प्रणाम करते हैं और यमुना पार कर के किनारे-किनारे दक्षिण दिशा की ओर उड़ते चले जाते हैं। जब यमुना लम्बा बहाव लेकर पूर्व की ओर मुड़ जाती है तो ये यमुना तट को छोड़कर दक्षिण-पूर्व के मध्य तिकोना कोण लेकर उड़ने लगते हैं। सीधे लम्बी दूरी तक उड़ने पर इन्हें यमुना पुनः मिल जाती है। ये यमुना पार कर पगडंडी के ऊपर उड़ते सीधे गिरिराज परिसर में पहुँच जाते हैं। यहाँ आकर वे सर्वसौभाग्यप्रद कुञ्ज में झाँकते हैं।

निभृत निकुंज : लीला दर्शन

सारिका आश्चर्यचकित है । यह गिरिराज परिसर भी विलक्षण अप्राकृत सौन्दर्ययुक्त है। लीला परिकरों की सुख-सुविधा के लिये, उन्हें भाँति-भाँति के उपकरण दे-देकर उनका प्रीति-विधान करने के लिये, प्रिया-प्रियतम की लीला को मधुरातिमधुर बनाने के लिये, उन्हें अभिनव रसपान कराकर क्षण-क्षण में आनन्दसिन्धु में निमग्न कर देने के लिये अहा ! यह भूमि प्रतिक्षण अपना रूप नव-नव सुन्दर परिवर्तन कर लेती है । जो एक क्षण सौन्दर्य अभिव्यक्त होता है, दूसरे क्षण उसका रूप दूसरा ही परिवर्तित हो जाता है । सर्व-सौभाग्यप्रद कुंज को सारिका ने कितनी ही बार देखा है, यहीं से तो उड़कर वह नन्दभवन गयी थी । वैसे, नन्दभवन से गिरिपरिसर की दूरी सोलह कोस है, परन्तु यदि प्रिया-प्रियतम को अपने निवास में वृन्दावन में अभी पहुँचना है तो इस विलक्षण भूमि में यह दूरी ठीक उतने ही समय के अनुरूप यात्रा के योग्य हो जाती है । यहाँ ऐश्वर्यशक्ति की सहायता से चमत्कार सर्वथा नहीं होता, यहाँ तो बाहर से तनिक भी, कुछ भी गन्ध न देकर, किसी भी अस्वाभाविकता का तनिक भी प्रकाश न करके अचिन्त्य लीलाशक्ति इस भूमि को तत्क्षण ही यात्रा के योग्य रूप दे देती है । न तो लीला परिकर को यह ज्ञान होता है

कि भूमि संकुचित हो गयी है, न स्वयं उस भूमि को ही यह भान है कि उसने अपना रूप संकुचित किया है । इसी प्रकार यह रूपसौन्दर्य में भी नवीन नवीनतर सुभग सज्जाओं से सज्जित हो जाती है । इसे स्वयं को ही पता नहीं लगता कि कदम्ब के स्थान पर चमेली की बेला कैसे परिवर्तित हो गयी।

एक क्षण पूर्व जहाँ कदम्ब था यदि प्रिया-प्रियतम को चमेली के पुष्पों की आवश्यकता हो जाय तो वही कदम्ब तत्क्षण ही चमेली में परिवर्तित हो जाता है। बात यह है कि कदम्ब बना हुआ लीला परिकर स्वयं लीला का संविन्मय जीवन्त अंग है । वह प्रिया-प्रियतम को सुख देने की लालसा से तत्क्षण ही दूसरा रूप ग्रहण कर लेता है। इन्द्र-नीलमणि-तरु लीला में योगदान करने के लिये आवश्यकता होने पर जल का ह्रद हो जाता है । जल का ह्रद मणिमय सुभगतटों से युक्त हो जाता है । फिर किसी भी परिकर की इच्छा, संकल्प होते ही मनोहर सौरभपूर्ण सुन्दरातिसुन्दर, पर देखने में प्राकृत कदम्ब जैसे ही पुष्पदान कर सकता है । पद्मराग का अशोक प्राकृत की भाँति अथवा ज्यों का त्यों रहकर कर्णाभरण के लिये गोप सुन्दरियों के हस्त कमल पर सुन्दर स्तबक-गुच्छ एवं साथ साथ ही प्राकृत अशोक कुसुम के समान ही दर्शनीय कुसुम-गुच्छ देकर लीला की धारा को अक्षुण्ण बनाये रह सकता है। अहा ! सारिका के वेष में पू० गुरुदेव चकित हैं । वे स्पष्ट देख रहे हैं, एक क्षण जो मणिमय रसाल है वही सुस्वादु आम्रफलों की वर्षा कर रहा है । सम्पूर्ण गिरिपरिसर का क्षेत्र प्रिया-प्रियतम की इच्छानुसार प्राकृत-सा बनकर रसपोषण में अपना योगदान कर रहा है । जो चिन्तामणिमय उद्यान है, जहाँ एक क्षण पूर्व यमुना नदी एवं उसके तट की परिकल्पना ही नहीं, वही मणिमय उद्यान, सुरम्य यमुना तट बनकर बालुका राशि से युक्त हो जाता है । विलक्षण देश है यह -- जहाँ जो चाहिये, जब चाहिये, वही प्रस्तुत हो जाता है । लीला की मधुमयी धारा निर्दिष्ट क्रम का अनुसारण करती आगे से आगे प्रसरित होती रहती है ।

सारिका की आँखों में न जाने किस अचिन्त्य सौभाग्य से, प्रियाप्रियतम की चरणरेणु की कृपा से निभृत निकुंजलीला की एक झाँकी प्रकट हो गयी । अहा ! वृन्दावनेश्वर और वृन्दावनेश्वरी का कैसा सुन्दर विहारमन्दिर है यह । अहा ! इस में राधा-माधव के स्वरूपानन्द से चिन्मय अनादि-अनन्त रस की स्रोतस्विनी बह रही है । अहा ! कैसी अनमोल निधि है यह नील-पीत-द्युति।

इन नील-पीत-द्युति के लिये पद्मोदभव पितामह भी तरसते हैं। नारद-सनकादि ऋषियों की वैकुण्ठ, कैलाश और ब्रह्मलोक में निर्बाध गति भले हो, व्रजपुर का अनिर्वचनीय आनन्द इनके लिये सुदुर्लभ है फिर इस निभृत-निकुंज में प्रवेश का तो प्रश्न ही नहीं है । फिर यह सारिका साधारण पक्षी, जो एक ब्राह्मण सन्यासी मानव का भावदेह है ऐसा महाभाग्यवान कैसे हो गया कि शिव-सनकादि-सुदुर्लभ-गति में इसका प्रवेश निर्बाध हो रहा है । यह पक्षी व्रजपुर स्थित नन्दभवन में निर्बाध सर्वत्र विचरण कर आया है, वहाँ गोप-गोपियों, यशोदा-नन्दादि महामहिम स्वरूपों के दर्शन और प्रीति भावों में अवगाहन कर आया है और अब इसे व्रजमंडल के सर्वलीलामुकुटमणि इस राधा कुण्ड के भी दर्शन हो रहे हैं। अरे, अरे ! यह सर्वसौभाग्यप्रद इस निकुंज में ही नहीं इसके निभृत में स्थित प्रियाप्रियतम के शयन कक्ष में भी झाँक रहा है। यह कैसे संभव हो गया ? यह तो महती आश्चर्य ही है । अरे भाई ! इसे साधारण पक्षी मत मान लेना । इसने नीलसुन्दर एवं भानुकिशोरी के स्वरूप-विलास में अपने चित्त का सर्वथा, सर्वांश में विलय कर लिया है । इसके मन से अन्य किसी जगत की, प्राकृत लोकों की स्फूर्ति सर्वथा, सर्वांश में ही समाप्त हो गयी है । इसे तो सर्वत्र सर्वरूपों में मात्र सच्चिन्मयी नील-पीत-द्युतिही भरी दृष्टिगोचर होती है । इसने नीलसुन्दर की अहैतुकी कृपा का अवलम्बन लेकर इस नील-पीत-द्युति को अपने उरस्थल में इस प्रकार विजड़ित कर लिया है कि इसके लिये देवाधिदेव इन्द्रपद ही नहीं, वैकुण्ठ एवं कैलाश के सुख तो काकविष्ठावत् हेय हो ही गये हैं, मोक्षपद और अपुनर्भव सुख भी तृणवत् त्याज्य हो गये हैं । अत: इसके पीछे लौटने की तो अब संभावना ही सर्वथा समाप्तप्राय: है । तभी न इसके पंखों में नीलसुन्दर की नित्य लीलास्थली व्रजपुर की ओर उड़ने की स्पृहा जाग्रत हुई है । तभी न इसका प्रादुर्भाव भगवती निकुञ्जेश्वरी किशोरीरानी के कृष्ण-कुन्तलों से संभव हुआ है ।

तो देखो ! सारिका अपने चक्षुओं से निहार रही है । उसके नेत्र अर्द्धनिमीलित हैं। वह मणिमय निकुंज की गवाक्षिका से निकुञ्ज-कक्ष में शयित नराकृति परब्रह्म और उसकी ह्लादिनीशक्ति की झाँकी कर रही है । शयनागार अभिनव चिन्मय रस से प्लावित हो रहा है । प्रियतम के तन का अणु-अणु अपनी किशोरीरानी के रस में निमग्न है और रानी चिन्मय भाव समाधि में डूबी है ।

रानी के बाहुपाश में निबद्ध प्रियतम का अप्रतिम अनिंद्य सौन्दर्य-माधुर्य ऐसा विलक्षण है जैसा आजतक बाल्य, पौगण्ड -- किसी अवस्था में कभी किसी के अनुभव में नहीं आया । अहा ! पीतद्युति कनकवर्णी अभूतपूर्व कमलिनी पद्मा एक अद्भुत अपूर्व नवीनतम नीलपद्म से गुँथी हुई है । अहा ! कैसे विलक्षण अरविन्द-द्वय हैं ये, जिनका आघ्राण इससे पूर्व के अवतारों में तो भक्तों ने अनुभव किया ही नहीं, इस कृष्णावतार की किसी अवस्था में भी किसी गोपी को ऐसी झाँकी कभी भी नहीं हुई । ऐसी अतुलनीय सुन्दर, मधुर, मनोहर युगल रूप की जो झाँकी सारिका को इस समय हो रही थी, वह त्रिगुण से सर्वथा, सर्वथा परे की थी । सारिका निर्निमेष नयनों से देखती ही रह जाती है । अनन्त रससागर में वह डूब ही जाती है । बाह्य-ज्ञान खोकर वह अन्तःश्चेतना के जगत में जा पहुँचती है । वह अनुभव कर रही है कि सम्पूर्ण व्यवधानों को सर्वथा अपसारित कर, प्रियतम नीलरमण अपनी प्रिया के भुजपाश में बँधें हैं । दो अरुणिम नवल पल्लवों से प्रिया के चित् पीयूष का वे पान कर रहे हैं । दोनों युगल दंपति का परिरंभण इतना सुदृढ़ है कि जिसे विश्लेष कभी स्पर्श कर ही नहीं सकता । और इस रसपान में विराम का प्रश्न ही नहीं है । कालातीत निर्बाध, अखण्ड, असीम रसप्रवाह उच्छलित हो रहा है ।

परन्तु यह क्या ? अब तो प्रभात हो रहा है । चन्द्रमा पश्चिम गगन में भागा जा रहा है । देखो, देखो, तब ? क्या इनको पृथक् होना पड़ेगा ? परन्तु इन दोनों के अंग-अंग प्यार से इतने भरे हैं कि ये तो मानो किसी भी परिस्थिति में कभी भी पृथक् किये ही नहीं जा सकेंगे । क्या इनकी यह प्रेमनिद्रा हर लेने की सामर्थ्य किसी में है ? कौन ऐसे अचिन्त्य रस-सुख में डूबे इनको जाग्रत करने का दुस्साहस कर पावेगा ?

परन्तु यह क्या, एक वनकुक्कुट के मुख में इन युगल रसिक दंपति की निद्रा हर लेने की सामर्थ्य प्रदान कर स्वयं अचिन्त्य योगमाया महाशक्ति मानो इन वृन्दावनेश्वर, वृन्दावनेश्वरी के कमनीय श्रीअंगों में विलीन हो जाती हैं । बडभागी विहंगम पहरुआ खग जोर-जोर से बांग देने लगता है । और फिर तो सभी पक्षियों का वह तुमुल कोलाहल प्रारंभ हो जाता है जिसकी तुलना ही नहीं । चकवा-चकवी रसमयी वार्ता करने लगते है । चातक पुकार उठते हैं । कपोत-कपोती भी अपनी घुत्-घुत् ध्वनि में ताल देने लगते हैं। कोकिल गायन करने लगती हैं ।

परन्तु सारिका इन युगल दंपति के विरह की आशंका से असह्य वेदना में भर उठती है । उसकी वेदना इतनी अथाह हो उठती है, मानो उसका प्रशमन हो ही नहीं पावेगा ? परन्तु ज्योंही वह वेदना सहनशक्ति-सीमा का उल्लंघन करती है एक विलक्षण नवीन सत्य सारिका के सम्मुख उजागर हो जाता है।

नहीं, नहीं, इनका विलगता संभव नहीं है। इनमे वियोग हो ही नहीं सकता । इनका मिलन संयोग-वियोग इस द्वंद्व की परिधि के परे का है ।

सारिका अनुभव करने लगती है, अरे ! अभी तो ये प्रकट-विलास में लीलायमान हैं, परन्तु ज्योंही इन युगल दम्पति के अंग-अंग विलग होंगे इनका गोपन भाव-विलास प्रारंभ हो जायगा । प्रियतम प्रिया के उरस्थल में विलीन हो जायेंगे और प्रिया प्रियतम के उरस्थल में समाहित हो रहेंगी । और तब इनका एक दूसरे के परस्पर हृदयों को अपना निलय बनाकर, वहीं प्रतिष्ठित रहकर लीला कल्लोलिनी का सृजन प्रारंभ हो जायेगा । सारिका स्पष्ट अनुभव करती है कि जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति, सभी काल, सभी देश में प्रिया प्रियतम नित्ययुगल ही रहते हैं, कभी ये दो से एक होते ही नहीं । इनका नित्य द्वैत ही एकत्व है । और एकत्व ही नित्य द्वैत है । यह पीत-कलेवर नीलकलेवर को एवं नीलकलेवर पीतद्युति को, महारस-विलास की ऊर्मियों से आप्यायित करता ही रहता है ।

सारिका इस भाव तरंग में परिस्नात हुई बोल उठती है :-"अहा ! मेरे प्राणवल्लभ का अपनी प्रिया से नित्य मिलन है । इन्हें परस्पर वियोग की छाया छू ही नहीं सकती ।"

सारिका नाच रही है -"नित्य मिलन ! नित्य मिलन !! अखण्ड मिलन!!! मिलन ही मिलन !!!!" और सारिका के स्वर में स्वर मिलाकर वन के सभी विहंगम बोल उठते है- "निर्बाध मिलन, निर्बाध मिलन ।"

और कौन कहे, भविष्य में यह सारिका आगे क्या-क्या नित्य अभिनव नूतन देखेगी और महा आनन्द सिन्धु में नाचती रहेगी ।

दिशि दिशि शुकसारी मण्डलैर्गूढलीला
प्रकट मनु पद्दभिर्निर्मिताश्चर्यपूर :।
तदति रहसि वृत्तं प्रेयसी कर्णमूल
स्मितमुखमभिमन्यं भाति कुंजे बिहारी ।।

सारिका प्रसंग : तृतीय लीला
रूपदर्शन

लो, गिरिराज परिसर से उड़ती हुई सारिका पुनः नन्दभवन में आ गयी । पुनः सारिका ने अपने प्राणपति नीलसुन्दर के शयनकक्ष की ओर प्रस्थान किया और गवाक्षिका से उसके भीतर दृष्टि डाली । देखते ही उसे प्रतीत हुआ मानो स्रष्टा ने विश्वातीत सुन्दर श्यामघन किशोर के विचित्र रूप का निर्माण किया है । सारिका ऐसे सुन्दर रूप को देखकर फूली नहीं समा रही थी । अतृप्त नयनों से वह शयित नवघन-सुन्दर अपने प्राणपति का सौन्दर्य निहारती हुई वहीं उसी गवाक्षिका में नृत्य करने लगी । उसके मुख से संगीत झरने लगा। सारिका गायन करने लगी :-

जहँ जहँ नयना लगत, तहँ तहँ तासौं खगत
अंग अंग माधुरी बरनी न जाई !!
सुन्दर भाल कपोल मोहन मधुरे बोल
नासिका चिबुक अधर मन रह्यौ है लुभायी ।
हसन दसन ललन मुख की लुनाई
यह छवि निरखन कहा कहौं, दौरी हौं आयी ।
गोविन्द प्रभु की सुन्दर बानिक पर रसिक जन बलि बलि
बलि बलि जायी ।

नाचते-गाते सारिका के मन में आया - एक बार अपने प्राणपति से सर्वथा मिल जाऊँ । उनके अहा ! परम प्रेमास्पद अंगों का निकटतम स्पर्श पाकर कृतार्थ हो जाऊँ । साथ ही इनकी श्यामता की एक पुट मेरे अंगों में भी लग जाय ; अहो ! इन मेरे प्रियतम का मुख तो एक प्रस्फुटित अरविन्द है । दोनों नेत्र दो उत्फुल्ल कोरक हैं । ये दोनो चरण तो पूर्ण विकसित पंकज हैं । सारिका इस सौन्दर्य को देखकर स्तब्ध है । अहा ! जिस अंग पर दृष्टि डालो वहीं-वहीं उसकी दृष्टि सुस्थिर हो जाती है। उसके मन, प्राण ही नहीं रोम-रोम विमोहित हो रहे हैं ।

सारिका बहुत काल तक इस रूप छबि को हृदय में अंकित कर पुनः फुर्र उड़ चलती है । वह उड़ती हुई सुभग यमुना तट पर आ जाती है। वह यमुना महारानी के दर्शन करती है । उसके प्रियतम श्यामसुन्दर के अंगों की अद्‌भुत श्यामलता जैसे यमुना महारानी ने चुरा ली हो - वह देखती ही रह जाती है। वह अपने प्राणपति के अंगों की तुलना यमुना के स्वरूप से कर बैठती है । उसे आश्चर्य होता है कि ऐसी श्यामलता यह कलिन्दनन्दिनी कहाँ से प्राप्त कर पायी ? वह विचार करने लगती है :- "क्योंकि प्रियतम सखियों सहित इसमें जल विहार करते हैं, क्या उस समय श्याम रंग रञ्जित अपने अंगों को धोने से यह यमुनाजल श्यामवारि हो गया है ?" श्रीमती यमुनादेवी के दर्शन मात्र से सारिका का अंग-अंग पुलकित हो उठता है। उसे अपने रसमयी जन्म की स्मृति हो आती है जब यमुना सखी प्रतिदिन प्यार में भरकर उसे प्रिय पूजा के लिये नित्य नवीन रसपूर्ण सामग्री, वस्त्र एवं अलंकार प्रदान करती थी । ये यमुना ही प्रिय-विरह-काल में उसे मिलन की आशा बँधाती थीं। आज भी यमुना उसे जैसे प्रकट होकर कह रही थी:-"बहिन ! सारिके !! वे हमारे प्राणवल्लभ विलक्षण प्रेम-दानी हैं । जो इनका मात्र ध्यान, स्मरण-चिन्तन भर कर लेता है उसे ही अपना स्वरूप दान कर देते हैं। देख, न ! मुझ जड़ नदी पर इनकी कैसी अद्‌भुत कृपा है। इन्होंने मुझे अपने श्यामल अंगों की आभा प्रदान कर यत्किञ्चित् अपनी तुलना की सामग्री बना ली है । इतना ही नहीं इन्होंने मुझे तो अपना प्रिया-पद देकर श्यामा नाम ही प्रदान कर दिया है । अपनी प्राणप्रिया किशोरीरानी सहित ये मेरे सँग नित्य विहार करते हैं ।" सारिका आनन्द में मत्त हुई यमुना महारानी की स्तुति करने लगती है:-

"नमो तरणितनया, परम पुनीत जग पावनी कृष्ण मन भावनी
रुचिर नामा ।।
अखिल सुखदायिनी सर्वसिद्धि हेतु श्रीराधिकारमण रतिकरण श्यामा
विमल जल सुमन कानन मोदयुत पुलिन अतिरम्य प्रिय व्रजकिशोरा।
गोप गोपी नवल प्रेम रति बंदिता तट मुदित रहत जैसे चकोरा।